भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

प्रज्ञा

प्रथम अंक : २०१२

भाकृअनुप
ICAR

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर

एला, ओल्ड गोवा, गोवा-403 402

अंक-१ वर्ष-२०१२

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

प्रज्ञा

भाकृअनुप
ICAR

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर

एला, ओल्ड गोवा, गोवा-४०३ ४०२

संरक्षक

डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक

मुख्य सम्पादक

डॉ. मतला जूलियट गुप्ता
वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं प्रसंस्करण अभियांत्रिकी)

सह-सम्पादक

श्री शशि विश्वकर्मा
कार्यक्रम सहायक (प्रयोगशाला तकनीकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, उत्तर गोवा

हिन्दी टंकण एवं आवरण

श्री विक्रान्त गुप्ता
अ.श्रे.लि.

प्रकाशन एवं सम्पर्क सूत्र

डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह, निदेशक
गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर
एला, ओल्ड गोवा
दूरभाष : ०८३२-२२८४६७८, ७९
फैक्स : ०८३२-२२८५६४९
ई–मेल : director@icargoa.res.in

निदेशक की कलम से

आज के वैज्ञानिक युग में संसार के लगभग सभी देश ज्ञान–विज्ञान की दौड़में आगे बढ़ रहे हैं। कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हम निरन्तर अनुसंधान के प्रगति पथ पर अग्रसर हैं और उसकी उपलब्धियाँ विभिन्न भाषाओं के माध्यम से प्रकाश में आ रही हैं। वैज्ञानिक विकास के इस उदयमान बेला में विभिन्न देशों की उपलब्धियों को जनसुलभ बनाने हेतु अपनी भाषा में व्यक्त करने की आज महती आवश्यकता है। देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को सन् १९५० में भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४३ के तहत संघ की राजभाषा के रूप में अपनाया गया है। हम उसका प्रसार–प्रचार केवल प्रशासनिक कार्यो में ही नहीं अपितु ज्ञान–विज्ञान के सभी क्षेत्रों में करने हेतु संकल्पित एवं प्रयासरत हैं।

प्रज्ञा का प्रकाशन, गोवा के लिए भा. कृ. अनु. प. का अनुसंधान परिसर, का हिन्दी को बढ़ावा देने का एक अभिनव प्रयास है। प्रकाशन में सभी का सहयोग अविस्मरणीय है। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का आंकलन सुधी पाठकों को करना है। समस्त पाठाकों के सुझाव एवं विचार आमंत्रित है जिससे तद्ननुसार पत्रिका के आगामी अंकों में सुधार एवं निखार सम्भव हो सके। आशा है कि अपेक्षित एवं आलोचनात्मक सहयोग अवश्य उपलब्ध होगा।

''प्रज्ञा'' के प्रकाशन हेतु सम्पादक मण्डल के सभी सदस्य बधाई के पात्र हैं। मैं उन सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपनी प्रतिभा ज्ञान को हिन्दी भाषा के रूप में उजागर कर राजभाषा का मान बढ़ाया है।

शुभकामनाओं सहित!

(नरेन्द्र प्रताप सिंह)
निदेशक

सम्पादकीय

कृषि क्षेत्र में गोवा के लिए भा. कृ. अनु. प. का अनुसंधान परिसर द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिन्दी पत्रिका ''प्रज्ञा'' का पहला अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यंत आनन्द की अनुभूति हो रही है। मुझे आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि यह अंक अपनी उपयोगिता साबित करेगी । श्रीमती इंदिरा गांधीजी ने कहा था कि "हिन्दी देश की एकता की ऐसी कड़ी है, जिसे मजबूत करना प्रत्येक भारतीय का मूल कर्तव्य है।" हम वैज्ञानिकों एवं सभी कर्मचारियों का यह कर्तव्य है कि देश की एकता और अखण्डता को मजबूत करने वाली हमारी राजभाषा को जनसम्पर्क भाषा बनाने में अपना बहुमूल्य योगदान समर्पित करें। प्रज्ञा इस दिशा में हमारा पहला कदम है।

गोवा में कृषि को तृतीय स्थान प्राप्त है और यहाँ तीन प्रकार की स्थलाकृतियों खजान, खेर एवं मोरोड में विभिन्न कृषि प्रणालियाँ प्रचलित हैं। किसान को बेहतर लाभ का एहसास कराने के लिए एकीकृत एवं मिश्रित खेती प्रणाली को अपनाने पर संस्थान द्वारा ज़ोर दिया जा रहा है। ''प्रज्ञा'' के इस अंक में कृषि–विज्ञान, बागवानी, पशु–विज्ञान, कृषि संरचना अभियंत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण आदि विषयों पर लेख संकलित हैं।

मैं इस पत्रिका के प्रकाशन में अमूल्य सहयोग देने के लिए सम्पादक मण्डल, संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का विशेष आभार व्यक्त करती हूँ । अंत में लेखकों एवं पाठकों से निवेदन करना चाहती हूँ कि इसी तरह का सहयोग एवं प्रेम बनाए रखें ताकि भविष्य में भी ''प्रज्ञा'' के अंक समय से प्रकाशित हो पाए।

(मतला जूलियट गुप्ता)
प्रधान सम्पादक

विवरणिका

क्रम	लेख एवं लेखक	पृष्ठ सं.
१.	मूंगफली की खेती उत्तरपूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में ला सकती है तेल क्रांति **डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ. अमृत लाल सिंह**	१
२.	मिश्रित खेती : नियमित आय का स्रोत **शशि विश्वकर्मा, दीप कुमार एवं संजीव कुमार सिंह**	६
३.	मधुमक्खी पालन का गोवा राज्य में भविष्य **एच. आर. चिदानंद प्रभु, शशि विश्वकर्मा**	१०
४.	आधुनिक खेती में मृदा परीक्षण की आवश्यकता **डॉ. राम रतन वर्मा**	१२
५.	गोवा में आम की लोकप्रिय हो रही आम्रपाली प्रजाति **डॉ. (स्व.) सुरेन्द्र प्रताप सिंह**	१६
६.	पोषण एवं रोजगार में कन्द फसलों का महत्व **डॉ. एम. थंगम**	१९
७.	गोवा के प्रमुख फलों का महत्व **डॉ. (सु.श्री.) एस. प्रिया देवी**	२१
८.	गोवा के लिए संरक्षित खेती **डॉ. (सु.श्री.) मतला जूलियट गुप्ता**	२४
९.	पपीता की उन्नतिशील खेती **दीप कुमार, शशि विश्वकर्मा, डॉ. राज नारायण**	२७
१०.	दुधारू पशओं के लिए आवास प्रबंधन **डॉ. एस. के. दास**	३१
११.	दुधारू जानवरों का रोग एवं रोकथाम-भाग-१ **डॉ. एस. बी. बारबुद्धे**	३४
१२.	अधिक उत्पादन हेतु दुधारू पशुओं का संतुलित आहार **डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक**	३९
१३.	सांड की प्रजनन क्षमता **डॉ. एम. करूणाकरण, डॉ. ई.बी. चाकुरकर, डॉ. पी. के. नाईक, डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह**	४४
१४.	कृषि विज्ञान केन्द्र का कृषि प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण में योगदान **डॉ. राज नारायण**	४६
१५.	संस्थान का अनुसूचित जनजाति सह–योजना के अन्तर्गत गतिविधियाँ	४९
१६–	संस्थान की राष्ट्र भाषा कार्यक्रम	५२

मूंगफली की खेती उत्तरपूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में ला सकती है तेल क्रांति

डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह[1], डॉ. अमृत लाल सिंह[2]

प्रस्तावना

आहार चाहे निरामिष हो या सामिष, गरीब करें या अमीर, खाद्य तेल सभी के लिए भोजन का अनिवार्य हिस्सा है। खाद्य तेल मानव जीवन के स्वास्थ्य एवं विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आहार विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कम से कम 50–55 ग्राम तेल आवश्यक है। परन्तु भारत में इसकी औसत उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन केवल 30 ग्राम ही है। इस स्थिति में भारत में प्रत्येक व्यक्ति को तेल एवं वसा वर्ष में मात्र 11 कि.ग्रा. ही मिल पाता है इसकी तुलना में विश्व में इनकी वार्षिक उपलब्धता औसत 20 कि.ग्रा. है जो भारत की उपलब्धता से लगभग दोगुना है। इसी प्रकार देश में तिलहनों की औसत उपज प्रति हेक्टेयर 900 कि.ग्रा. से कुछ अधिक है, जो विकसित देशों की औसत उपज की तुलना में काफी कम है।

भारत में तिलहनों का उत्पादन स्तर

भारत में तिलहनों को लगभग 2 करोड़ 50 लाख हेक्टेयर इलाकें मे उगाया जाता है। वर्ष 2005–06 के दौरान देश में तिलहनों का उत्पादन 2 करोड़ 79 लाख 80 हजार टन था जो कि अब तक का सबसे ज्यादा उत्पादन माना जाता है। हालांकि तिलहनों का कुल क्षेत्रफल करीब पिछले दो दशक से करीबन 2.50 करोड़ हेक्टेयर ही है, तिलहनों का उत्पादन जो कि 1990–91 के दौरान 1.861 करोड़ 86 लाख 10 हजार टन से बढ़कर 2.8 करोड़ टन तक पहुँच गया है। यह सब तिलहनों की उन्नत किस्में एवं सस्य प्रणाली की वजह से ही संभव हुआ है। परन्तु हमारी बढ़ती जनसंख्या की मांग की पूर्ति के लिए एवं तिलहनों की उपलब्धता को कायम करने के लिए तिलहनों की कुल उत्पादन हर वर्ष 3–4 प्रतिशत बढ़ाने की जरुरत है।

तिलहनों की खेती अधिकतम 60 प्रतिशत बारानी इलाकों में की जाती है जो वर्षा पर निर्भर रहते हैं। वनस्पति तेल ज्यादातर नौ तिलहनों से निर्मित किये जाते है। ये हैं– मूंगफली, तोरिया, सरसो, तिल, कुसुम नाइजर (रामतिल), सोयाबीन,

1. निदेशक, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
2. प्रधान वैज्ञानिक, मूंगफली अनुसंधान निदेशालय, पो.वा. 5, जूनागढ़–362 001 (गुजरात)

सूरजमुखी एवं अलसी। तिलहनों के कुल उत्पादन में मूंगफली, तोरिया और सरसों का प्रतिशत सर्वाधिक रहता है। सोयाबीन एवं सूरजमुखी की खेती को हालांकि बहुत समय नहीं हुआ फिर भी खाद्यान्न तेलों के भण्डार में इनका काफी योगदान रहने लगा है। भारत के प्रमुख तिलहन उत्पादक राज्यों में गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा एवं तमिलनाडु सम्मिलित हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वर्ष 2005 तक देश को 50 मिलीयन टन तिलहनों के उत्पादन की आवश्यकता होगी, जो कि तिलहनों का क्षेत्रफल, उन्नत किस्में एवं सस्य प्रणाली से ही संभव है। तिलहनों का क्षेत्रफल परम्परागत क्षेत्रों में बढ़ाना संभव नहीं है परन्तु पूर्वोत्तर भारत में जो कि कई तिलहनों का परम्परागत क्षेत्र नहीं है एवं जहाँ पर पानी की प्रचुर मात्रा उपलब्ध है तिलहनों की, खासकर मूंगफली की खेती अच्छी तरह से की जा सकती है एवं कुल तिलहनों के क्षेत्रों में वृद्धि हो सकती है। क्षेत्रफल बढ़ाने का यह एक सरल उपाय है, जिससे उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

मूंगफली का वितरण, क्षेत्रफल एवं उत्पादन

हमारे देश के तिलहनों के उत्पादन में मूंगफली की खेती का विशेष स्थान है। करीबन 15 वर्ष पहले मूंगफली की खेती भारत में लगभग 8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में होती थी एवं भारत विश्व में मूंगफली उत्पादकों में प्रथम स्थान रखता था। परन्तु 1995 से मूंगफली के क्षेत्रफल में लगातार कमी आ रही है तथा अब यह घटकर 6.5 मिलियन हेक्टेयर ही रह गया है। हालांकि इधर पिछले 15 वर्ष से उत्पादकता काफी बढ़ी है जिससे मूंगफली की पैदावार लगातार बढ़ी है फिर भी हमारी उत्पादकता कई विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है। इस समय भारत में मूंगफली का उत्पादन करीब 8 मिलियन टन है एवं चीन के बाद द्वितीय स्थान पर है। मूंगफली से कुल खाद्य तेलों का उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होता है। परन्तु हमारे देश में मूंगफली की उत्पादकता काफी कम लगभग 1200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है क्योंकि मूंगफली की खेती का लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्रफल असिंचित है। भारत के विभिन्न राज्यों में मूंगफली का क्षेत्रफल एवं उत्पादन प्रतिशत निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

भारत के विभिन्न राज्यों में मूंगफली की खेती वर्ष 2005–06

राज्य	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)	प्रतिशत क्षेत्रफल (%)	उत्पादन (मिलियन टन)	प्रतिशत उत्पादन (%)	उत्पादकता (कि.ग्रा./हेक्टेयर)
गुजरात	1.95	29.0	3.39	42	1700
आन्ध्र प्रदेश	1.88	28.0	1.37	17	700
तमिलनाडु	0.62	9.2	1.0	14	1800
कर्नाटक	1.04	15.4	0.67	8.4	650
महाराष्ट्र	0.43	6.4	0.41	5.1	1000
उड़ीसा	0.09	1.34	0.11	1.4	1200
मध्य प्रदेश	0.21	3.12	0.23	2.9	1100
उत्तर प्रदेश	0.11	1.63	0.09	1.1	850
राजस्थान	0.32	4.75	0.49	6.1	650
अन्य		0.09	1.34	0.13	1.6
सम्पूर्ण भारत			6.74	7.99	1187

स्रोत : *"Agriculture at a Glance 2008"*

भारत में मूंगफली की खेती तकरीबन 200 वर्षों से होती आ रही है एवं वर्तमान में मूंगफली ने तिलहनों में प्रथम स्थान बना लिया है। उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र के कई राज्यों में मूंगफली का उत्पादन लगभग पिछले तीन दशकों से किया जा रहा है जिसमें त्रिपुरा, नागालैंड, मेघालय, मनीपुर एवं अरूणाचल प्रदेश मुख्य है।

उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में मूंगफली की खेती

उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में राष्ट्रीय मूंगफली संशोधन केन्द्र (अब मूंगफली अनुसंधान निदेशालय) जूनागढ़ के सहयोग से भारतीय कृषि अनुसंधान परिसर के कई राज्यों में कई महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये जिससे इन राज्यों के मूंगफली की उत्पादकता एवं लोकप्रियता बढ़ाने में काफी मदद मिली है। यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण तकनीकियों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है जिसे पूर्वोत्तर भारत में मूंगफली की पैदावार बढ़ाने में काफी मदद मिलेगी।

प्रयोगों के आधार पर उत्तरपूर्वी क्षेत्र के मूंगफली की निम्न प्रजातियाँ अच्छी उत्पादन क्षमता रखती है :

खरीफ : ICGS 76, ICGS 44, ICGV 86590, BAU 13, CSMG 84-1, TRG 19A, GG 20, GG 7, TG 37A.
रबी : ICGS 76, TG 37A, GIRNAR-1, GG 7.

कई वर्षो के अध्ययन में पाया गया कि उत्तर पूर्वी राज्यों में मूंगफली की ICGS 76, ICGV 86590, BAU 13, CSMG 84-1, GG13, GG20 ,OA TKG19A प्रजातियों की फली की उपज 2000 कि.ग्रा./हेक्टेयर से अधिक पाया गया एवं पूर्वोत्तर भारत में अधिक वर्षा एवं आर्द्रता के कारण पत्ती वाले तीन रोगों (अगेती, पछेती झुलसा एवं रस्त) में इन प्रजातियों में काफी कमी पायी गयी। इन इलाकों में कार्बनिक पदार्थ की अधिकता एवं मृदा के ढ़ीलापन की वजह से मोटे दाने वाली मूंगफली की प्रजातियों का दायरा काफी बढ़ सकता है एवं इस क्षेत्र में BAU 13, GG7, GG20 प्रजातियाँ काफी अच्छी पायी गयी हैं। चूँकि सम्पूर्ण उत्तर पूर्वी राज्यों में मूंगफली एक खाद्यान्न के रूप में उपयोग होता है ये नयी प्रजातियाँ एक क्रान्ति ला सकती हैं।

आँकड़े हमें बताते है कि मूंगफली में यहाँ की भूमि एवं जलवायु में अत्याधिक उत्पादकता दर्शाने की अपार संभावनायें हैं। अनुसंधान के आंकड़े यह भी दर्शाते है कि मूंगफली की कई प्रजातियाँ मेघालय एवं अन्य राज्यों में जो समुद्र तल से मध्यम ऊँचाई (करीब 1496 मी.) पर स्थित है, अच्छा उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं।

पूर्वोत्तर भारत में सभी राज्य जहाँ की मिट्टी का पी.एच. 5.5–7.0 हो तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा मध्यम हो मूंगफली की फसल के लिए अच्छी हैं। परन्तु जिस मृदा का पी.एच. 5.5 से कम हो तो उसमें चूना 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से कूड़ों में डालकर ही मूंगफली लगानी चाहिए। पूर्वोत्तर भारत के सभी प्रदेशों में मूंगफली की फसल खरीफ में उगाई जाती है**,** जिसका उचित बुवाई का समय 5 मई से 15 जून तक है। इधर कुछ वर्षो से मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय और आसाम में मूंगफली की रबी की फसल, धान के बाद अथवा परती भूमि में सितम्बर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर तक बोया जाता है। जहाँ पर कम तापमान एक मुख्य समस्या है, पॉलीथीन अथवा घासफूस के मलबे से निवारण किया जा सकता है। इस पद्धति को अपनाकर मूंगफली का क्षेत्रफल काफी बढ़ाया जा सकता है खासकर धान की फसल के बाद।

मूंगफली की अच्छी उपज के लिए 40 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय कूड़ों में डालना चाहिए। अगर जीवांश की कमी हो तो 5–10 टन गोबर की अथवा कोई भी जीवांश खाद डालना चाहिए। जिससे मूंगफली की पैदावार काफी अच्छी होती है।

अम्लीय भूमि में कैल्शियम की प्रायः कमी होती है जबकि मूंगफली की फली के भराव के लिए काफी मात्रा में कैल्शियम चाहिए अतः चूने का उपयोग कूड़ में बुवाई के लिए 1–2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अति आवश्यक है। कैल्शियम युक्त पदार्थ जैसे चीनी मिल का प्रेशमड एवं पेपर मिल का बेसिक स्लेग एवं उर्वरक मुख्य विकल्प हैं, जिनको चूने के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।

अम्लीय भूमि में बोरान की प्रायः कमी रहती है जिसके लिये 1.0 कि.ग्रा. बोरान (एग्रीकाल अथवा बोरोक्स) के रूप में प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय डालना चाहिए। समूचे पूर्वोत्तर भारत में मूंगफली की खेती नयी एवं खेत पानी में डूबे रहने की वहज से जैव उर्वरकों जैसे ब्रेडीराइजोवियम, फास्फोरस घोल सूक्ष्मजीव (पी.एस.एम.) तथा पौधा बढ़ाने वाले राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) का प्रयोग अति उत्तम पाया गया। अतः हर किसान को इनका उपयोग करना चाहिए।

मूंगफली की फसल को मक्का के साथ 2 : 2 पंक्तियों तथा ऊपरी भूमि पर धान की फसल के साथ 4 : 2 पंक्तियों के अनुपात में अथवा अन्य अतश्स्यीय फसल के रूप में लिया जा सकता है। इसके अलावा अन्य फसल भी मूंगफली के साथ लगाई जा सकती है। पूर्वोत्तर भारत में काफी मात्रा में एग्रोफारेस्ट्री प्रचलित है। मूंगफली की फसल सभी आर्चड में करीब 3–4 वर्ष तक लगायी जा सकती है क्योंकि इस फसल पर छाया का ज्यादा असर नहीं होता।

लगभग समस्त उत्तर पर्वी क्षेत्र में 2000 मि.मी. से भी अधिक प्राप्य वार्षिक वर्षा एवं उच्च आर्द्रता, मध्यम तापक्रम, निम्न से मध्यम धूप एवं बलुआर दुमट से बलुआर, अम्लीय एवं जीवांश पदार्थ से प्रचुर मृदा एवं उपयुक्त मृदा बयन मूंगफली के उत्पादन में वरदान साबित हो रही है। मेघालय में मूंगफली की खेती चाहे समतल भूमि हो या नदी घाटी या पहाड़ी की तलछटी सभी जगहों पर सफलतापूर्वक की जा सकती है। यहाँ जलवायु में मूंगफली की कीट–व्याधि आदि का प्रकोप भी नगण्य सा ही है और किसानों को प्रति हेक्टेयर औसतन 20–25 कुन्तल फली का उत्पादन आसानी से प्राप्त हो जाता है, जो राष्ट्रीय स्तर के औसत उत्पादन से दोगुने से भी अधिक है। यही नहीं मेघालय एवं मणिपुर की पहाड़ियों में एवं त्रिपुरा में मूंगफली की दूसरी फसल भी कुछ वैज्ञानिक विधियाँ जैसे पॉलिथीन या अन्य प्रकार की मल्च के प्रयोग से की जा सकती है। परन्तु मेघालय में मूंगफली की फसल की संसाधन एवं क्रय–विक्रय सम्बन्धी सुविधाओं की अनुपस्थिति की वजह से मूंगफली की खेती का विस्तार होने में कठिनाई हो रही है।

फसल का समय एवं पद्धतियाँ

समस्त उत्तर पूर्वी–क्षेत्र में मूंगफली की खेती मुख्यतः खरीफ अथवा रबी की एकल फसल के रूप में की जाती है। परन्तु धान एवं मक्का में मूंगफली की अंतर फसल लेने से धान एवं मक्के की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ मिट्टी की गुणवत्ता में भी सुधार होता है एवं मूंगफली, जो एक नकद फसल है, से वास्तविक आमदनी में भी बढ़ोत्तरी होती है। उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र की ढालू भूमियों में धान एवं मक्के की फसल की कम उत्पादकता के कारण आर्थिक दृष्टि से इनकी खेती लाभकारी नहीं है और ऐसी फसलों के स्थानापन्न में मूंगफली एक महती भूमिका निभाने के साथ–साथ भूमि की उर्वरता को बनाए रखने में भी सहायक होती है और खेती को इस क्षेत्र में लाभकारी बनाकर निर्विघ्नता प्रदान करती है।

मूंगफली की खेती में कठिनाइयाँ

कभी–कभी लगातार भारी वर्षा, अत्याधिक आर्द्रता एवं सामान्य से कम तापक्रम एवं रबी मौसम में सूखा, मूंगफली की खेती पर अपना कुप्रभाव डालता है। भूमि की अम्लीय प्रकृति के कारण फास्फोरस एवं कैल्शियम की उपलब्धता घटने से मूंगफली के पौधों की बढ़वार पर प्रतिकूल असर होता है एवं दाने के आकार एवं उनकी भराई प्रभावित होने से पैदावार घट जाती है। मूंगफली की उन्नत किस्मों के उपलब्ध न होने या उनमें अकुंरण क्षमता खो देने वाले बीजों के प्रयोग से फसल की

उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ता है। रबी के मौसम में सिंचाई की समुचित व्यवस्था न होने से भी फसल की उत्पादकता पर बुरा असर पड़ता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं कृषि विश्वविद्यालयों में विकसित आधुनिक सस्य–पद्धतियों के बारे में किसानों को जानकारी के अभाव से भी अपेक्षित प्रगति सम्भव नहीं हो पाती। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि मूंगफली एक प्रचुर पोषक तत्वों वाली फसल है परन्तु इसकी खेती सीमांत एवं समसीमान्त भूमियों में जिनकी उर्वरता शक्ति पहले से ही कम होती है, में बिना या सीमित पोषक तत्वों के प्रयोग से की जाती है। चूंकि मूंगफली की बीज काफी कीमती होती है इसकी समुचित खेती के लिए प्रचुर मात्रा में फास्फोरस, पोटाश एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों एवं चूने की आवश्यकता होती है, परन्तु इस क्षेत्र के किसानों की आर्थिक दशा दयनीय होने से वे इनका प्रयोग करने में असमर्थ होते है। इस क्षेत्र में किसानों को ऋण आदि देने के लिए सहकारी साख समितियों की कमी के कारण उन्हें उन्नत कृषि के लिए ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता। मूंगफली की खेती करने के लिए इस क्षेत्र के परिस्थितियों के अनुकूल उचित कृषि उपकरण या अन्य मशीनों जैसे मूंगफली खोद यंत्र आदि के अभाव में इसकी उत्पादन लागत अत्याधिक हो जाती है। फिर किसानों को उनकी उत्पादन लागत का उचित मूल्य भी स्थानीय सुविधाओं के अभाव में नहीं मिल पाता है। साथ ही इस क्षेत्र में भू–स्वामित्व के अपनाए जा रहे नियमों के कारण यहाँ के किसानों को मूंगफली की खेती करने के लिए आकर्षित करना कठिन है। अतः उपरोक्त वर्णित कठिनाइयों के निराकरण होने पर ही यहाँ मूंगफली की खेती का विस्तार सम्भव हो सकेगा।

पूर्वोत्तर भारत में मूंगफली की गुच्छे वाली प्रजातियाँ 110–125 दिनों में और फैलने वाली प्रजातियाँ करीब 130–150 दिनों में पकती है। पत्तियों का पीलापन परिपक्वता का स्पष्ट लक्षण है। परन्तु यह लक्षण पूर्वोत्तर भारत की मिट्टी में ज्यादा नमी की वजह से ठीक तरह से नहीं दिखता है। इस स्थिति में फलियों का परीक्षण अति आवश्यक है। परिपक्व फलियाँ कड़ी एवं मजबूत हो जाती है तथा छिलके की अंदरुनी सतह काली एवं जालीदार हो जाती है। परिपक्व फली को जब अंगुली और अंगुठे के बीच से दबाया जाता है तो फटने की आवाज आती है। मूंगफली को पकने के बाद उखाड़कर करीब एक हफ्ते सुखाया जाता है जिससे फलियों की नमी 6–7% के आसपास हो जाये क्योंकि अधिक नमी पर पीली फफूंद के द्वारा एफ्लाटाक्सिन उत्पन्न होने लगता है। सूखी फलियों को पॉलीथीन अस्तर वाले बोरो में भरकर भंडारित किया जाता है। भंडारण के दौरान नमी की मात्रा न बढ़े एवं बीज अच्छी तरह से रहे उसके लिए कैल्शियम क्लोराइड (100 ग्राम. प्रति 30 कि.ग्रा फलियाँ) का उपयोग करना चाहिए। सुखाने एवं भंडारण की यह प्रक्रिया पूर्वोत्तर भारत में काफी कारगर है, अतः उपयोग में लाना चाहिए।

सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत की समतल भूमि, नदी की घाटी, मध्यम ऊंचाई तक की पहाड़ियों पर, जहाँ पर जल निकास ठीक है, मूंगफली की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। अरूणाचल में आसाम से जुड़े पूर्वी सियांग की समतल भूमि की पतली पट्टी में मूंगफली, खरीफ फसल के रूप में स्थान ले रही है। आसाम के जोरहाट, नांगांव एवं उत्तरी कछार एवं उत्तरी लखीमपुर में मूंगफली बढ़ रही है हालांकि रबी में यह फसल सभी जिलों में थोड़ी बहुत धान के बाद परती भूमि पर उगायी जा रही है। मणिपुर के थौवाल, उखरुल एवं सेनापति जिलों के तलहटी में मूंगफली की खेती की जा रही है एवं इसकी क्षेत्रफल दिनों दिन बढ़ रही है। मेघालय की ऊपरी भूमि एवं गारो पहाड़ियों, रिभोई एवं उमरोइ जिलों में खरीफ में एवं धान के बाद मूंगफली की खेती बढ़ रही है। खासकर इस भूमि, पर इसकी बहुत अच्छी उपज पायी जाती है। मिजोरम में आइजोल, कोलसिन क्षेत्र की ढालू भूमि जो कि आसाम एवं त्रिपुरा से लगी है, में मूंगफली खूब बढ़ी है। नागालैण्ड के कोहिमा एवं दीमापुर में मूंगफली की खेती काफी लोकप्रिय बन रही है। त्रिपुरा के तीन ज़िलों, दक्षिणी, उत्तरी एवं पश्चिमी त्रिपुरा की ऊपरी एवं टीला भूमि पर खरीफ की फसल एवं धान की फसल के बाद रबी मौसम में मूंगफली उगायी जाती है। रबी में मूंगफली की उत्पादकता काफी अच्छी है (3–4 टन प्रति हेक्टेयर), जिसकी वजह से किसानों को काफी फायदा हुआ है।

अतः यह कहा जा सकता है कि मूंगफली की खेती पर अगर थोड़ा ध्यान दिया जाये तो उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में तेल क्रांति ला सकती है।

मिश्रित खेती : नियमित आय का स्रोत

शशि विश्वकर्मा[1], दीप कुमार[2] एवं संजीव कुमार सिंह[3]

विश्व की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है, जो अब सात अरब के आंकडे को पार कर गई है। दूसरी तरफ सघन फसलोत्पादन पद्धति और जलवायु की असामान्य परिवर्तनो के कारण गत एक दशक से फसलों की उत्पादकता में कमी आयी है जबकि दूसरी ओर कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। प्रति व्यक्ति कम होती जा रही कृषि योग्य भूमि तथा खेती में बढ़ती लागत के कारण सीमान्त एवं लघु किसानों को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। धान्य फसलों की उत्पादन पद्धति में किसानों को फसल की कटाई के समय वर्ष में दो बार ही आमदनी प्राप्त होती है किन्तु उनके दिन प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु लगातार धन की आवश्यकता पड़ती है। अतः उन्हे दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऋण लेना पड़ता है और वापस न कर पाने की दशा में उनकी आर्थिक और मानसिक स्थिति खराब हो जाती है, परिणामस्वरूप आत्महत्या तक करने की नौबत आ जाती है। अतएव यह परम आवश्यक है कि प्रचलित खेती में बदलाव लाया जाये जिससे किसानों को लगातार आय मिलती रहे। मिश्रित खेती पद्धति से तात्पर्य उस कृषि पद्धति है जिसमें किसान अनाज उत्पादन के साथ-साथ अन्य सह व्यवसाय जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन, सब्जी उत्पादन इत्यादि करते हुए परिवार की आमदनी एवं रोजगार बढ़ा सकता है। दूसरे शब्दों में मिश्रित कृषि पद्धति से तात्पर्य उस कृषि प्रबंधन से है जो किसानो को दैनिक आवश्यकताओ जैसे भोजन, चारा, ईंधन, रेशों आदि की पूर्ति करे और उसकी आमदनी बढ़ाये।

गोवा में कृषि का स्थान पर्यटन एवं खनन के बाद आता है। यहाँ राज्य की 16.6% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कुल कृषि जोत 17,2108 हेक्टेयर है जिसके 37.94% भाग पर उद्यान एवं रोपण फसलें जैसे काजू, नारियल आदि तथा 2.18% भाग पर अन्य फसलें जैसे गन्ना, तिलहन आदि की खेती की जाती है।

गोवा में जहाँ कृषि जोत कम है तथा सीमांत एवं लघु किसानों की बहुलता है , भूमि की उत्पादकता एवं उत्पादन क्षमता बहुत कम है, नई भूमि का विस्तार सीमित है और मानसून की अनिश्चितता है, फसल हानि की सम्भावना अधिक रहती है। यहाँ पर मिश्रित खेती एक वरदान साबित हो सकती है, जिसे अपनाकर किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकता है इसके आलावा कृषि सम्बधी कई व्यवसाय एक साथ करने से पानी का बहुस्तरीय उपयोग करके जल की खपत कम की जा सकती है और दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगातार पूरे वर्ष आय भी प्राप्त होती है। मिश्रित खेती पद्धति अपनाने से एक व्यवस्था के गौण उत्पादन (अवशेष) दूसरे व्यवसाय में उपयोग किये जा सकते हैं इससे किसानो की शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है, भूमि की उर्वरता भी बढती है और साथ ही पर्यावरण भी संतुलित रहता है।

1. कार्यक्रम सहायक (प्रयोगाला तकनीकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
2. प्रक्षेत्र प्रबंधक, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
3. तकनीकी सहायक, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

लाभ / महत्त्व

वर्तमान समय में मिश्रित खेती एक आवश्यक खेती के रूप में उभर कर आ रही है। यह एक आकर्षक, लाभप्रद, समृद्ध, रोजगार सृजक तथा धनोपार्जक व्यवसाय के रूप में प्रचलित हो रही है। हर स्तर के किसान व व्यवसायी मिश्रित खेती को अपनाकर अपनी आमदनी बढ़ा रहे हैं। पहले लोगों को इस व्यवसाय में कम आमदनी होती थी परन्तु आज विश्व के बदलते परिदृश्य में और विविध एवं अच्छी गुणवत्ता वाले खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग की वजह से आज यह व्यवसाय लोगों को पैसा, प्रतिष्ठा तथा लोकप्रियता प्रदान कर रहा है।

1. **नियमित उत्पादन :** एकल खेती पद्धति में जहाँ क्षति की सम्भावना अधिक एवं लाभ कम होता है, वहीं पर मिश्रित खेती पद्धति में क्षति की सम्भावना कम एवं लाभ अधिक रहता है। यदि किन्हीं कारणों वश किसी एक फसल/घटक से क्षति होती है तो इस स्थिति में भी दूसरी फसल/घटक से उत्पादन मिलता रहता है।

2. **नियमित आय :** सामान्यतः खेती पद्धति में वर्ष में केवल दो बार फसल कटने पर ही किसानो को आय प्राप्त होती है। जबकि मिश्रित खेती पद्धति में किसानो को वर्ष के बारहों महीनों किसी न किसी घटक से आय मिलती रहती है।

3. **नियमित रोजगार :** सामान्य खेती पद्धति में खेतिहर मजदूर को केवल वर्ष में दो बार ही रोजगार मिलता है। एक फसल की बुआई पर और दूसरी उसकी कटाई पर, वर्ष के शेष दिन वे रोजगारहीन रहते है। मिश्रित खेती पद्धति में धान, गेहूँ, दाल, तिलहन के अलावा दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, सब्जी उत्पादन, मधुमक्खी पालन आदि से उनको व किसान के परिवार के सदस्यों को वर्ष भर रोजगार मिलता रहता है।

4. **उत्पादन क्षमता :** उत्पादनों में वृद्धि के लिए अधिकाधिक रासायनिक खादों, कीटनाशियों का प्रयोग हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उत्पादकता में गिरावट आ रही है। साथ ही भूमि की भौतिक एवं रासायनिक दशा बिगड़ती जा रही है। मिश्रित खेती पद्धति में जहाँ कृषि के सह व्यवसाय जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन बकरी पालन आदि से हमें कार्बनिक खाद प्राप्त होता है जिसको भूमि में प्रयोग करके भूमि की उत्पादन क्षमता एवं वातावरण को भी स्वस्थ बनाये रखा जा सकता है।

5. **संतुलित आहार :** भारत जैसे देश में जहाँ 70 प्रतिशत से भी अधिक आबादी गावों में रहती है, आर्थिक पिछड़ापन व कुपोषण की समस्या बन चुकी है। मिश्रित कृषि पद्धति से किसानों व उनके परिवारों को संतुलित आहार, फल, सब्जी अण्डे, मछली, दूध इत्यादी की प्राप्ति हो जाती है।

मिश्रित कृषि के घटक

बकरी पालन :

बकरी एक ऐसी जानवर है जो मुश्किल परिस्थितियो में भी अपना जीवन यापन कर सकती है। बकरियाँ पहाड़ो की ऊँची चोटी पर चढ़कर भी चर लेती हैं, इसके अलावा मैदानी और रेगिस्तानी इलाको की कठिन परिस्थितियों में चर कर अपना पेट भर लेती है। बकरी को चलता फिरता बैंक कहना बहुत सटीक है। बकरी ही ऐसा एक जानवर है जिसको कभी भी किसी समय पैसे की जरूरत पड़ने पर बेचकर तुरंत पैसा प्राप्त किया जा सकता है। अनुसंधान एवं परीक्षणों से पाया गया है कि 50 बकरियों के झुण्ड से प्रतिमाह ₹ 2,716/- तथा प्रतिवर्ष ₹ 68,595/- तक

आय प्राप्त हो जाती है। बकरी की मैंगनी खाद के रूप में भी भूमि में प्रयोग किया जाता है, जिससे भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है। परिणाम स्वरूप कृषि में लागत को कम किया जा सकता है। साथ ही साथ फसल का उत्पादन भी अच्छा होता है।

शूकर पालन

मिश्रित कृषि में शूकर पालन की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि यह खासकर गरीब और कम जोत वाले किसानों द्वारा पाला जाता है। शूकर एक बहुप्रजनक और सबसे तीव्र वृद्धि करने वाला प्राणी है। इस पशु के शरीर का एक अहम हिस्सा भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। मिश्रित खेती की विभिन्न प्रणालियों जिसमें बागवानी फसलें+शूकर पालन+मत्स्य पालन या शस्य फसलें+शूकर पालन+मत्स्य पालन को अपना कर किसान अपने और अपने परिवार का पोषण स्तर में सुधार कर सकता है और नियमित आय भी प्राप्त कर सकता है।

मुर्गीपालन

मुर्गीपालन कम समय तथा कम लागत में अतिलाभकर व्यवसाय है। मुर्गीपालन से किसानों को पूरे वर्ष लगातार आय प्राप्त होती है और पौष्टिक अण्डे एवं मांस का उत्पादन भी होता रहता है। भारत में जहाँ मुर्गियों की औसत उत्पादन क्षमता 300-310 अण्डे प्रतिवर्ष तथा 40-45 दिन की आयु पर ब्रायलर का शारीरीक वजन 2 कि. ग्रा. तक पहुंच जाता है, अच्छी तरह रेख देख एवं कुशल प्रबन्ध से 100 मुर्गियों की झुण्ड से लगभग 15-20 हजार रुपये प्रतिवर्ष तक की आय प्राप्त हो जाती है। मुर्गी की बीट एक अच्छी खाद है और इसका उपयोग भूमि की उर्वरता और फसल की उत्पादकता बढ़ाता है।

मछली पालन

मछली पालन एक अधिक उत्पादन क्षमता वाली पद्धति है परंतु इस उत्पादन को पाने के लिए अत्यधिक लागत, कृत्रिम आहार कार्बनिक एवं अकार्बनिक उर्वरक के रूप में व्यय होता है। मिश्रित मछलीपालन, पशुधन जैसे गाय-भैंस-बकरी-मुर्गी-शूकर आदि के साथ करके इसकी लागत को कम किया जा सकता है। पशुओं द्वारा गिराये गये मल - मूत्र इत्यादि का उपयोग मछलियो के आहार और तालाब की उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। हमारे देश में मिश्रित मछली पालन में शूकर-मछली पालन, कुक्कुट-मछली पालन इत्यादि का पालन साथ - साथ किया जा सकता है। मिश्रित मछली पालन से बिना किसी सम्पूरक आहार के 300-600 कि.ग्रा. मछली/हेक्टर/वर्ष तक का उत्पादन आसानी से मिल जाता है, जिससे ₹ 15,000-30,000/- तक आय हो सकती है।

संक्षेप

कृषि में बढ़ती लागत, खाद्य उत्पादन में निरंन्तर गिरावट एवं घटती कृषि जोत के कारण केवल धान - गेहूँ जैसी परम्परागत फसलों के उत्पादन से ही किसानो की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता है। फसल उत्पादन के साथ मुर्गीपालन, शूकर पालन, दुग्ध उत्पादन एवं मछली पालन आदि को अपनाकर ही किसान अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार ला सकता है। इसके अलावा

मिश्रित खेती से न केवल किसान व उसके परिवार बल्कि देश की जनता को पौष्टिक आहार एवं निरन्तर रोजगार मिलने की सम्भावना बढ़ जाती है और साथ ही साथ वातावरण भी सुरक्षित रहता है।

विभिन्न कृषि उद्यमों का तुलनात्मक विश्लेषण

अवयव	क्षेत्रफल	कुल श्रमिक (पुरूष/दिन)	कुल खर्च (₹)	कुल आय (₹)	शुद्ध आय (₹)
धान्य फसलें	7980 वर्ग मी.	98.2	3,315	8,954	5638
बहुवर्षीय फसलें	2080 वर्ग मी.	87.0	3,831	12,920	9,089
फल उद्यान	450 वर्ग मी.	18.4	900	2,366	1,466
सब्जी उद्यान	6197 वर्ग मी.	96.4	3,812	12,114	8,302
पुष्प उद्यान	300 वर्ग मी.	4.0	125	225	100
मत्स्य पालन	20 हेक्टर	31.0	3,722	20,325	16,603
कुक्कुट पालन	120 मुर्गी/है.	23.0	9,240	10,221	981
बकरी पालन	100/है.	23.0	5,387	6,100	713
मशरूम उद्यान	225.43 वर्ग मी.	180.0	18,184	31,040	12,856
मधुमक्खी पालन	8 बॉक्स	1.0	170	1,350	1,180
जैव गैस (बायोगैस)	1 वर्ग मी.	11.0	600	2,031	1,431
योग		573.0	49,286	107,646	58,360

स्रोत : बेहरा, यू. के. और महापात्रा, आई.पी. (1999)
इंडियन जनरल ऑफ एग्रोनॉमी

हिन्दी देश की एकता की ऐसी
कड़ी है जिसे मजबूत करना
प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।
– श्रीमती इंदिरा गांधी

हिन्दी राष्ट्र की आत्मा है।
– महात्मा गाँधी

मधुमक्खी पालन का गोवा राज्य में भविष्य

एच. आर. चिदानंद[1], शशि विश्वकर्मा[2]

मधुमक्खी पालन का इतिहास भारत में लम्बे काल से है। आदिवासियों, जो की जंगलो एवं गुफ़ाओं मे रहते थे, का शहद ही प्रथम मीठा पदार्थ था। इसके अतिरिक्त मधुमक्खी पालन को रंग पदार्थ के उत्पादन में भी उपयोग किया जाता था। सभ्यता वे विकास के साथ-साथ शहद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पदार्थ बन गया है। इसके इतिहास का सम्बन्ध साधारणतः जंगलों और उत्तरी हिमालय के कुछ भागों, जहाँ पर इसका पालन एक सामान्य व्यवसाय बन गया है।

मधुमक्खी पालन मुख्यतः पेड-पौधो से जुडा व्यवसाय है, जहाँ से विभिन्न प्रकार के पराग-कण प्राप्त होता है, जिसका उपयोग मधुमक्खी शहद उत्पादन में करती हैं। मधुमक्खी पालन में किसी अतिरिक्त भूमि की जरूरत नहीं होती है। इसलिए मधुमक्खी पालन एक आदर्श सह व्यवसाय है। यह किसानों के लिए अतिरिक्त मुद्रा का तथा महत्वपूर्ण प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ का स्रोत है।

खादी एवं ग्रामोद्योग के स्थापना के बाद मधुमक्खी पालन का विकास तेजी से हुआ। शहद का उत्पादन आज देश में दस हजार टन से भी ज्यादा हो गया है, जिसका मुल्य लगभग तीस करोड है। पंजाब, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में देशी मधुमक्खी एवं यूरोपियन मधुमक्खी के प्रजातियों जैसे ऐपिस मेलीफेरा का काफी प्रचलन हुआ है।

स्रोत एवं क्षमता

मधुमक्खी पालन के लिए कच्चा पदार्थ मुख्यतः फूल एवं उनके परागकणों से प्राप्त होता है। लगभग पांच सौ प्रकार के पौधे व प्रजातियों के फूलो के पराग कणों का प्रयोग मधुमक्खी करती है। मधुमक्खी की लगभग सात प्रजातियाँ हैं, जिनमें चार डंकयुक्त और तीन डंकरहित होती हैं। भारत के पास लगभग १२० मिलियन मधुमक्खी के कालोनियों को रखने की क्षमता है। इससे लगभग ६० मिलियन लोगो को स्वरोजगार मिल सकता है और लगभग १.२ मिलियन टन शहद की उत्पादन हो सकता है। यह लगभग ५ मिलियन आदिवासी परिवारों के आय का स्रोत हो सकता है।

1. विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
2. कार्यक्रम सहायक (प्रयोगशाला तकनीकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

मधुमक्खी पालन की तकनीकी

मधुमक्खी पालन का सबसे मुख्य उद्देश्य शहद पैदा करना होता है। आधुनिक मधुमक्खी पालन में शहद के अतिरिक्त, रायल जैली, गोंद आदि का भी उत्पादन होता है। यह तभी सम्भव है जब उचित तरीके से उसका प्रबन्ध करते है। आधुनिक मधुमक्खी पालन में अच्छे किस्म के प्रसंस्करण यंत्र की भी जरूरत होती है जिसके परिणाम स्वरुप ही अधिक एवं अच्छे किस्म के शहद का उत्पादन किया जा सकता है। साथ ही साथ कुछ आधारभूत प्रबंध जैसे कीट पतंगों से रक्षा, बीमारियो का नियंत्रण आदि करके ही मधुमक्खी के कालोनी को स्वस्थ बनाया जा सकता है। कुछ विशेष प्रबंधन तकनीकी जैसे रानी मक्खी का पालन, कालोनी का बहुगुणन आदि तभी सम्भव है जब मधुमक्खी पालन का प्रयाप्त ज्ञान एवं अनुभव हो।

बाजार

भारत में सालाना लगभग १०,००० टन शहद का उत्पादन होता है। उनमें से लगभग ९५ प्रतिशत ऐपिस सेरेना की कालोनी से प्राप्त होती है और शेष यूरोपियन मधुमक्खी की कालोनी से प्राप्त होती है।

जंगली शहद मुख्यतः आदिवासियों के द्वारा जंगलो से एकत्रित किया जाता है। जंगली शहद थोडी पतली तथा उसमे पराग कण की मात्रा ज्यादा तथा मधुमक्खी के कुछ भाग एवं धूल के कण भी होते है। शहद निकालने वाले को समान्यतः १० रुपये से २५ रुपये प्रति किलो के हिसाब से प्राप्त होता है। आधुनिक मधुमक्खी पालन में शहद समान्यतः शहद निकालने वाली मशीन से प्राप्त होता है। कुछ अन्य प्रकार के यंत्र जैसे रानी मक्खी को अलग करनेवाला यंत्र, शहद प्रसंस्करण यंत्र आदि का उपयोग किया जाता है।

भारत के कई भागों मे जहाँ मधुमक्खी पालक शहद को सीधे उपभोक्ता को बेचता है, उसको अच्छा मूल्य प्राप्त होता है। सन १९९० के दौरान रबर के पौंधे का लगभग ६० प्रतिशत का योगदान शहद उत्पादन में था। इसके अतिरिक्त जामुन, अर्जुन, नीम, लीची, सरसों, तिल, सूरजमुखी आदि शहद उत्पादन के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। जंगली शहद का मुख्यतः प्रयोग दवाओं एव खाद्य प्रसंस्करण में होता है। मधुमक्खी पालन द्वारा प्राप्त शहद समान्यतः उपभोक्ता के प्रयोग में होता है। लगभग ५० प्रतिशत शहद का व्यवसाय एगर्माक के आधार पर किया जाता है। सन १९८५ मे ६.५ ग्राम शहद प्रति व्यक्ति उपयोग करते थे जिनके तुलना में अन्य वही दूसरे देशों में २०० ग्राम प्रति व्यक्ति उपयोग था। आजकल २.४ प्रतिशत शहद का प्रयोग मुख्यतः दवाओ एव धार्मिक क्रिया कलापों मे मिला जा रहा है। पिछले कुछ सालो से शहद का उत्पादन बढा है। साथ ही साथ उसका उपभोग भी खाद्य पदार्थ के रुप मे बढा है।

आजकल क्षेत्रीय शहद की मांग ज्यादा है , उदाहरण स्वरुप महाबलेश्वर का शहद। महाराष्ट्र के लोग ज्यादातर जामुन के शहद को ही पसंद करते है। शेन एवं सुरेन शहद जम्मू एवं काश्मीर में काफी प्रचलित है। राजस्थान एवं उत्तरी भारत के राज्यों में आजकल लीची शहद की मात्रा बहुत ज्यादा है।

गोवा एक पर्यटक स्थल है जहाँ देशी और विदेशी पर्यटक पूरे साल आते रहते हैं। यहाँ शहद का उत्पादन एक अच्छा अतिरिक्त आय का स्त्रोत बन सकता है। इसके अलावा अप्रत्यक्ष रुप से परागण लाभदायक भी होता है। खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग कार्यालय मडगांव में स्थित है , जो किसानो को शहद की व्यवसाय करने के लिए सहायता उपलब्ध कराता है।

आधुनिक खेती में मृदा परीक्षण की आवश्यकता

डॉ. राम रतन वर्मा[1]

वर्तमान समय में जब जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और खेती योग्य भूमि दिन प्रतिदिन सड़क एवं रेलमार्ग निर्माण, भवन निर्माण एवं नयी औद्योगिक इकाईयों की स्थापना हेतु प्रयोग के कारण लगातार घट रही है और विभिन्न फसलों का उत्पादन स्थिर हो रहा है। ऐसी स्थिति में प्रति ईकाई उत्पादन को बढ़ाने की जरूरत है। बरसों से हम खेती करते चले आ रहे हैं और केवल कुछ प्रमुख पोषक तत्वों को ही हम मृदा देते आ रहे हैं, जबकि हमें यह भी पता नहीं होता है कि किस पोषक तत्व की कितनी मात्रा मृदा में उपलब्ध है और कितनी अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता है। पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए बहुत से पोषक तत्वों की जरूरत होती है लेकिन उनमें से 17 पोषक तत्वों को आवश्यक पोषक तत्व माना गया है। ये पोषक तत्व इस प्रकार हैं जैसे नत्रजन, फास्फोरस, पोटास, कैल्शियम, मैगनीशियम, गन्धक, लौह, जिंक, जस्ता, मैग्नीज, बोरान, मौलिब्डिनम, क्लोरीन और निकिल। फसलें कुछ पोषक तत्वों को अधिक मात्रा में पोषित करती है तथा कुछ पोषक तत्वों को निम्न मात्रा में अधिशोषित करती हैं और इसके साथ ही भिन्न–भिन्न फसलों की पोषक तत्वों की आवश्यकता भी अलग–अलग होती है। उपर्युक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता के आधार पर मुख्यतया तीन भागों में विभाजित किया गया है।

1. **मुख्य पोषक तत्व :–** पौधों को इन पोषक तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है इसके अन्तर्गत नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम आते हैं।

2. **गौण पोषक तत्व :–** इस वर्ग में कैल्शियम, मैगनीशियम सोडियम और सल्फर तत्व आते हैं, ये पोषक तत्व पौधों को पर्याप्त मात्रा में चाहिए लेकिन इनकी आवश्यकता मुख्य पौषक तत्वों की तुलना में कम होती है।

3. **सूक्ष्म पोषक तत्व :–** आयरन(लौह), जिंक, कापर (जस्ता) मैग्नीज, बोरान, मोलिब्डिनम, क्लोरिन और निकिल तत्व इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इन पोषक तत्वों की आवश्यकता सूक्ष्म मात्रा में होती है।

ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि मृदा का परीक्षण कराया जाए और मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा तथा फसल की आवश्यकता के अनुसार ही पोषक तत्वों का प्रयोग किया जाए जिससे कि फसलों को सभी ज़रूरती पोषक तत्वों को दिया जा सके तथा जो पोषक तत्व मृदा में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, उनका उपयोग न किया जाए। इसके साथ ही फसलों को सही मात्रा में आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराकर न केवल उनकी उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है बल्कि इसके साथ ही साथ पर्यावरण की गुणवत्ता को भी बढ़ाया जा सकता है। मृदा का परीक्षण कराने एवं फसलों में उर्वरकों की सही संस्तुति के लिए मृदा का नमूना एकत्र करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष तौर पर ध्यान देना चाहिए।

1. वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

मृदा नमूने का एकत्रीकरण

किसी खेत के मृदा परीक्षण के लिए उसका लिया गया नमूना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए मिट्टी का नमूना इस ढंग से लेना चाहिए कि वह जिस खेत से लिया गया है, उसके प्रत्येक भाग का प्रतिनिधित्व कर सके क्योंकि इसी नमूने की जाँच से उर्वरकों की संस्तुतियाँ तैयार की जाती है। किसी खेत से अलग–अलग भागों से लिए गये प्रत्येक नमूने को प्राथमिक नमूना कहते है। जब इन प्राथमिक नमूनों को आपस में मिला लिया जाता है। उससे प्राप्त नमूने को संयुक्त नमूना या प्रतिनिधि नमूना कहते है। मिट्टी का नमूना लेते समय खेत का रंग, गठन, फसल, प्रबन्ध, फसल–चक्र आदि कारकों पर ध्यान देना चाहिए। खेत को इनके आधार पर अलग–अलग भागों में बांट लेना चाहिए तथा प्रत्येक समान भाग से एक प्रतिनिधि नमूना लेना चाहिए ये भाग चाहे छोटा ही क्यों न हो।

नमूना लेने की गहराई

मिट्टी की ऊपरी सतह से 0–15 से.मी. (0–6 इंच) की गहराई तक पोषक तत्व पाये जाते हैं। इन्हीं का उपयोग सामान्य फसलें कर पाती हैं क्योंकि पौधों की जड़े मुख्य रूप से 15 से.मी. की गहराई तक के पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं। इस लिए मृदा परीक्षण के लिए साधारण फसलों में 0–15 से.मी. तक की गहराई से नमूने एकत्रित किये जाते हैं। यदि ट्रैक्टर आदि से गहरी जुताई की जाती है तो मिट्टी का नमूना 0–20 से.मी. तक का लेना चाहिए। स्थाई चारागाह और घास के मैदानों के लिए 0–8 से.मी. तक की गहराई तक का ही मृदा नमूना लेना चाहिए। फलों के बागों के लिए 15–25 से.मी. की परतों से 1 मी. गहराई तक मृदा नमूना लेना चाहिए। समस्याप्रद मिट्टियों में उन स्थानों से मृदा नमूना एकत्र करना चाहिए, जहाँ फसल की वृद्धि अन्य स्थानों की अपेक्षा कम हो अथवा पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखायी पड़ते हैं। उस स्थान से भी अलग नमूना लेना चाहिए जो समस्याप्रद स्थान से लगा है। गहराई वाली परतों से अलग–अलग नमूने लेने चाहिए। कंकड़ या कड़ी परत के भी नमूने एकत्र करने चाहिए ताकि मिट्टी के भिन्न अवयवों की भली भाँति जाँच करके उचित सिफारिश दी जा सके।

उपकरण एवं सामग्री

बाल्टी, खुर्पी, फावड़ा, स्केल, टैग, थैली, छलनी (2 मि.मी.)

मृदा नमूना लेने की वैज्ञानिक विधि

1. यदि खेत समतल हो और पूरे खेत में एक ही फसल उगायी गयी हो तथा उर्वरकों की समान मात्रा डाली गई हो तो पूरे खेत से एक ही संयुक्त या प्रतिनिधि नमूना लेना चाहिए अन्यथा खेत को सम्भावित भागों में बाँट कर अलग–अलग प्रतिनिधि नमूना लेना चाहिए।

2. मिट्टी का नमूना किसी नमूना लेने वाले यंत्र खुर्पी या फावड़े की सहायता से एकत्रित करना चाहिए।

3. नमूना लेने से पहले ऊपरी सतह से घास साफ कर देना चाहिए।

4. प्राथमिक नमूने लगभग 15–20 स्थानों से ज़िगज़ैक तरीके में रैंडम सेलेक्शन द्वारा करते है।

5. सबसे पहले 15 से.मी. गहरा अंग्रेजी के 'V' के आकार का गड्ढ़ा बनाते हैं फिर खुर्पी या फावड़े की सहायता से इसकी दीवार के साथ–साथ पूरी गहराई तक की लगभाग 1/2 इंच मोटी समान परत काटकर किसी साफ बाल्टी या पोलीथीन

थैली में एकत्र कर लेते हैं। इसी प्रकार 15–20 अन्य स्थानों से भी मिट्टी के उपनमूने लेकर बाल्टी में एकत्र कर लेते हैं और इस प्रकार लिये गये नमूनों को आपस में अच्छी प्रकार मिला लेते हैं।

6. इसके पश्चात् इस पूरी मिट्टी को किसी साफ कपड़े पर छाया में सुखा लेना चाहिए। धूप में सुखाने से पोषक तत्वों में अवांछनीय परिवर्तन हो जाते हैं। छाया में सुखाकर ढेले आदि तोड़कर कंकड़ पत्थर खरपतवार आदि निकाल कर फेंक देना चाहिए।

7. इसके बाद मिट्टी को अच्छी प्रकार मिलाकर फैला दें और फिर क्वाटर विधि द्वारा लगभग 1/2 कि.ग्रा. मिट्टी का नमूना तैयार करके एक साफ कपड़े या थैली में भर लेते हैं। दो कागज के टुकड़ों पर खेत संख्या कृषक का नाम व पता लिखकर एक थैली के अन्दर तथा एक ऊपर रखकर बांध देना चाहिए। यह नमूना पूरे खेत का प्रतिनिधि नमूना कहलायेगा।

मृदा नमूना लेने का उचित समय

फसल के बुवाई से एक महीना पहले नमूना लेकर प्रयोगशाला में भेजना चाहिए अन्यथा उर्वरकों की सिफारिश बुवाई के समय तक नहीं मिल पायेगी क्योंकि मृदा परीक्षण में लगभग एक महीने का समय लग जाता है। यदि समय कम हो तो पिछली फसल में कूड़ों के बीच से मिट्टी के नमूने एकत्रित किये जा सकते हैं। ध्यान रहे कि कूड़ों के बीच में उर्वरकों के या खाद के कोई अवशेष हो तो उनको बचाकर ही नमूने लेने चाहिए। शरद ऋतु में मृदा नमूना लेने का सबसे उपयुक्त समय माना गया है क्योंकि इस समय एक तो मिट्टी नम होती है जिससे नमूना लेने में आसानी होती है और दूसरी खरीफ की कटाई और रबी की बुबाई के बीच काफी लम्बा समय मिल जाता है, जिससे कि मिट्टी की जाँच के बाद उर्वरक की सिफारिश मिल जाती है।

सावधानियाँ

1. मृदा नमूना पेड़ों के नीचे या छाया से नहीं लेना चाहिए।
2. खाद के गड्ढे और पेड़ों के पास से मृदा नमूना नहीं लेना चाहिए।
3. मृदा नमूने को धूप में नहीं सुखाना चाहिए।
4. इनको उर्वरकों के बोरे पर सुखाकर प्रयोग नहीं करना चाहिए।
5. मृदा नमूने को बैट्री, कैमिकल्स तथा उर्वरकों के पैकिंग से दूर रखना चाहिए।
6. पिछली बार यदि मिट्टी की जाँच हुई हो तो उसका विवरण भी प्रयोगशाला में भेजना चाहिए।

मृदा नमूनों का मृदा परीक्षण प्रयोगशाला को प्रेषण

मिट्टी का नमूना मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेजने के लिए दो कागज़ के टुकड़ों पर निम्नलिखित सूचनाएँ लिखकर एक थैली के अन्दर तथा एक ऊपर रखकर बांध देना चाहिए

* खेत की संख्या/खेत का नाम
* नमूना लेने की गहराई
* मृदा नमूना लेने की तिथि
* मृदा नमूना लेने वाले का नाम

फसल का नाम जिसके लिए उर्वरक की सिफारिश चाहिए

उपर्युक्त सूचना लिखकर मृदा नमूना जाँच के लिए निम्नलिखित मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में भेजा जा सकता है।

* मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र
* जिला स्तरीय मृदा परीक्षण प्रयोगशाला
* मण्डलीय मृदा परीक्षण प्रयोगशाला

निष्कर्ष

भरपूर फसल उत्पादन हेतु फसलों को पर्याप्त मात्रा में पादप पोषक तत्व मिलना आवश्यक है। पौधों की समुचित वृद्धि एवं विकास को ध्यान मे रखते हुए यह ज़रूरी है कि मृदा का परीक्षण कराया जाय और मृदा परीक्षण की रिपोर्ट के आधार पर फसल विशेष के लिए जिन पोषक तत्वों की मृदा में कमी हो उनकी पूर्ति कार्बनिक खादों और रासायनिक उर्वरकों के सम्मिलित प्रयोग से की जाए। मृदा परीक्षण के निष्कर्ष को लागू करके न केवल भरपूर फसल उत्पादन लिया जा सकता है बल्कि अच्छी गुणवत्ता के फल–सब्जियों और खाद्यानों का उत्पादन कर इनका अच्छा बाजार मूल्य भी प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ ही पोषक तत्वों का प्रयोग फसल की आवश्यकता के अनुसार करके पौधों में बिमारियों एवं कीड़ों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास किया जा सकता है, जिससे कि फसलों में बीमारियों एवं कीड़ों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। इस प्रकार जहाँ एक तरफ मृदा परीक्षण परिणामों को लागू करके बीमारियों एवं कीड़ों के नियंत्रण पर आने वाले खर्च को कम किया जा सकता है वहीं दूसरी तरफ उत्तम गुणवत्ता के फल, सब्जियाँ एवं खाद्यानों का उत्पादन कर किसानों की आमदनी में बढ़ोत्तरी होगी तथा उर्वरकों की उचित मात्रा प्रयोग से पर्यावरण की गुणवत्ता को भी बनाये रखा जा सकता है। मृदा मे आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा उपलब्ध कराकर पोषक तत्वों के दोहन को रोककर मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाये रखा जा सकता है।

हिन्दी देश की एकता की ऐसी कड़ी है जिसे
मजबूत करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।
– **श्रीमती इंदिरा गांधी**

कर्म के बिना दूरदर्शिता एक दिवास्वप्न है,
दूरदर्शिता के बिना कर्म दु:स्वप्न है।
– **जापानी कहावत**

गोवा में आम की लोकप्रिय हो रही आम्रपाली प्रजाति

डॉ. (स्व.) सुरेन्द्र प्रताप सिंह[1]

गोवा भारत के पश्चिमी घाट का एक छोटा सा प्रदेश है, जिसका सम्पूर्ण क्षेत्र फल 3,61,113 हेक्टेयर है तथा जिसकी पैदा की जाने वाली फसल का क्षेत्रफल 1,71,455 हेक्टेयर है। गोवा के सम्पूर्ण क्षेत्रफल में उद्यान फसल का क्षेत्रफल 47.18 प्रतिशत है। गोवा में आम की जातियों में बहुत विभिन्नता है। अनेक प्रकार की आम की जातियाँ गोवा प्रदेश में उगायी जाती है तथा प्रदेश में आम का उत्पादन 4,178 कि./हे. है। प्रदेश में आम के उत्पादन में आशाजनक वृद्धि हुई है तथा इसका उत्पादन में 10,000 टन (1990-91) से बढ़कर 17,532 टन (2002-03) में हो गयी है। गोवा में मानकुराद, हिलारियो, फरनाडिस, गोवा हापुस, इत्यादि प्रदेश की कुछ प्रसिद्ध प्रजातिया हैं। प्रदेश में आम की 15 बाहर से लाई गई तथा 14 संकर प्रजातियों का उत्पादन एवं अध्ययन किया जा रहा है। आम्रपाली, देश की एक प्रसिद्ध प्रजाति, संस्थान में एक दशक से फल फूल रही है। जैसा की आम्रपाली के बारे में सभी को ज्ञात है कि यह जाति भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली से डा. आर. एन. सिंह इत्यादि द्वारा जारी की गयी है तथा देश के अनेक भागों में इसका उत्पादन काफी अच्छा पाया गया है। गोवा में इस जाति को नारियल के साथ अंतर फसल के रूप में अपनाया गया है तथा इस प्रणाली के साथ अच्छी उत्पादन भी पाई गई है।

पौधे की रोपण विधि

आम्रपाली को नारियल की तीन जातियों के साथ सन् 1986-87 में लगाया गया। इसका उत्पादन सन् 1993 से शुरू हुआ तथा औसत 2 किलो प्रति पौधा उत्पादन प्राप्त किया गया है। सन् 1997-98 में 23 पौधों द्वारा 215.00 कि.ग्रा. प्राप्त किया गया तथा औसत प्रति पौधा 9.35 कि.ग्रा. फल प्राप्त किया गया है। सन् 1999-2000 में 30 पौधों द्वारा 802.5 कि.ग्रा. फल प्राप्त किया गया तथा औसत प्रति पौध फल 26.75 किलो प्राप्त किया गया है।

सन् 2000-01 में 30 पौधों से 1342 किलो फल प्राप्त किया गया तथा औसत 44.75 किलो फल प्रति पौध प्राप्त किया गया। सन् 2001-02 में 30 पौधों से 670 किलो फल प्राप्त किया गया तथा औसत फल की उपज 22.34 किलो फल प्रति पौध प्राप्त किया गया।

आम्रपाली के उत्पादन में वृद्धि 1999-2000 में पायी गयी और अधिकतम 43 किलो फलप्रति वृक्ष प्राप्त किया गया। सन् 1999-2000 में 3386 फल आम्रपाली ब्लाक में प्राप्त किया गया तथा औसत 14.71 फल प्रति पौध प्राप्त किया गया। सम्पूर्ण पौधों में औसत 112.86 फलप्रति पौध तथा 26.75 किलो फलप्रति पौध इस पद्धति में प्राप्त किया गया। अधिक उत्पादन सन् 1999-2000 और 2000-2001 में प्राप्त किया गया। अधिकतम उत्पादन 96 किलो फल प्रति पौधा 6/2 पौधे में प्राप्त किया गया

1. पूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक (फल विज्ञान) एवं विभागध्यक्ष बागवानी विभाग
गोवा के लिए भा.कृषि अनु. परि. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

तथा इसमें फल की संख्या 239 तथा प्रतिफल औसत भार 401.67 ग्राम पाया गया। अधिकतम आकार के फल पौध संख्या 6/1 में 147 फल प्रति पौध तथा सम्पूर्ण उपज 83 किलो फल प्रति पौध प्राप्त किया गया। अधिकतम फल का भार 564.62 ग्राम पौध संख्या 6/1 में पायी गयी और सबसे अधिक उपज (96.00 कि. प्रति पौधा) देने वाले पौधे का प्रतिफल का भार 401.67 ग्राम पाया गया। आम्रपाली आम का उत्पादन एवं गुण नारियल की मिश्रित एवं अंतर फसल के रूप में देश में सबसे अच्छा गोवा में पाया गया। फल की तुड़ाई मई के दूसरे सप्ताह से शुरू होकर कुल जुलाई मई माह के अन्त तक की गयी। कुछ फल की तुडाई जून में भी की गयी। अधिकतम फल की संख्या 477 पौध संख्या 6/6 में पायी गयी और इस पौधे का कुल उत्पादन 80 किलो की पौधा तथा फल का भार 167.71 ग्राम फल प्राप्त किया गया। सन् 2000-2001 में आम्रपाली आम का औसत उत्पादन 44.75 किलो फल प्रति पौधा प्राप्त किया गया जबकि सम्पूर्ण बाग में औसत फल की संख्या 221.43 फल प्रति पौधा प्राप्त की गयी तथा इस वर्ष का उत्पादन पिछले वर्ष 1999-2000 की तुलना में जोकि 26.00 किलो प्रति पौधा था लगभग दोगुना प्राप्त किया गया। सम्पूर्ण आम्रपाली ब्लाक से (6643 फल) 1312.5 किलो कुल से सन् 2000-01 में प्राप्त किया गया। इन फलों में सम्पूर्ण घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 26 प्रतिशत प्राप्त की गयी तथा अधिकतम फल का भार 720 ग्राम फल तक प्राप्त किया गया। इस प्रकार से नारियल के साथ आम का उत्पादन लेकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

आम्रपाली ब्लाक में पीले रंग का आम्रपाली में जो कि क्लोनल संकलन द्वारा प्राप्त किया गया, अच्छे गुणवत्ता पाया गया। इस प्रकार से चयनित फलों में सम्पूर्ण घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 18% पायी गयी। इन फलो के अन्य गुण का भी अध्ययन किया गया। इन फलों की भण्डारण क्षमता अधिक पायी गयी तथा फल के स्वाद तथा गूदे का रंग भी विशिष्ट प्राप्त किया गया। गूदा साधारण आम्रपाली से अधिक ठोस और सुनहले पीले रंग का प्राप्त किया गया जब कि पीले आम्रपाली फल का ऊपर का रंग भी गाढ़ा पीला और आकर्षक प्राप्त किया गया।

आम्रपाली में सन् 2001-2002 में कुल 38 पौधों द्वारा उत्पादन लिया गया। इसमें कुल फलों की संख्या 3470 तथा फल का उत्पादन 670.35 किलो प्राप्त किया गया। पक्तियों में सबसे अधिक उत्पादन 565 फल 2/10 पंक्ति में प्राप्त की गयी जिसमें फल का उत्पादन 95 किलो पौधा तथा पौध संख्या 1/5 में 270 फल प्रति पौध के साथ 50.5 कि. फल प्रति पौधा प्राप्त किया गया। इसमें आम की बुवाई मई के दूसरे सप्ताह से शुरू होकर जून के तीसरे सप्ताह तक की गयी। कुल तुडाई इस अवधि में की गयी। तथा प्रति पौधा औसत उपज 20 किलो प्रति पौधा वर्ष 2001-02 में प्राप्त किया गया। फल के उपज में कमी का कारण कुछ पौधों द्वारा लगातार हर वर्ष में फल आना कम पाया गया।

आम्रपाली के फलों का गुण

आम्रपाली के फलों के गुण का 2004-05 में अध्ययन किया गया और पाया गया 10/5 पौधे में फल का औसत भार 354.00 ग्राम प्रति फल, लम्बाई 12.70 से.मी., चौड़ाई 7.5 से.मी. और मोटाई 6.59 से.मी. प्राप्त किया गया। गुठली का औसत भार 47.25 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। गुठली की लम्बाई 9.6 से.मी. तथा चौड़ाई 3.62 से.मी. मोटाई 1.8 से.मी. तथा छिलके का भार 53 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। फल में सम्पूर्ण घुलनशील शर्करा की मात्रा 19.05 प्रतिशत प्राप्त किया गया। आम्रपाली के 1/7 पौधे में औसत फलभार 380.00 ग्राम फल तथा लम्बाई 10.2 से. मी. चौड़ाई 7.5 से.मी. मोटाई 7.22 से.मी.प्राप्त किया गया। गुठली का भार 50 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। गुठली की लम्बाई 7.72 से.मी. चौड़ाई 3.58 से.मी. मोटाई 1.85 से.मी. तथा बिना रेशे के प्राप्त किया गया।

इसमें सम्पूर्ण घुलनशील शर्करा की मात्रा 20 प्रतिशत तक प्राप्त की गयी और फल का गुण एवं स्वाद बहुत अच्छा बिना रेशे

का पाया गया। आम्रपाली 2/2 के फल का औसत भार 276.00 ग्रा. प्रति फल प्राप्त किया गया। फल की लम्बाई 11.44 से.मी. चौड़ाई 6.81 से.मी. मोटाई 5.52 से.मी. प्राप्त किया गया। गुठली का भार 46 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। छिलके का भार 42 ग्राम प्रति फल तथा सम्पूर्ण घुलनशील शर्करा की मात्रा 17 प्रतिशत प्राप्त की गयी। आम्रपाली 3/6 के फल का औसत भार 310 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। फल की लम्बाई 11.86 से.मी. चौड़ाई 6.77 से.मी. मोटाई 6.55 से.मी प्राप्त किया गया। फल के गुटली का भार 60 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। गुठली की लम्बाई 10.44 से.मी. चौड़ाई 3.53 से.मी. मोटाई 2.04 से.मी. प्राप्त किया गया। गुटली की लम्बाई 10.44 से.मी. चौड़ाई 3.53 से.मी. मोटाई 2.04 से.मी. प्राप्त किया गया। फल के छिलके का भार 68 ग्राम प्रतिफल प्राप्त किया गया। सम्पूर्ण घुलनशील शर्करा की मात्रा 21.8 प्रतिशत प्राप्त की गयी। फल का गुण एवं स्वाद बहुत अच्छा और बिना रेशे वाला फल प्राप्त किया गया। आम्रपाली के 3/7 पौधे में पीले रंग का फल पकने से पहले ही प्राप्त हुआ जिसका औसत भार 225.00 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। फल की लम्बाई 11.56 से.मी. चौड़ाई 7.08 से.मी. मोटाई 5.59 से.मी. प्राप्त किया गया। फल की गुठली का भार 25 ग्राम तथा गुठली की लम्बाई 10.23 से.मी. चौड़ाई 3.57 से.मी. तथा मोटाई 1.69 से.मी. प्राप्त किया गया। फल का भार 25 ग्राम प्रति फल प्राप्त किया गया। फल के सम्पूर्ण घुलनशील ठोस शर्करा की मात्रा 18 प्रतिशत प्राप्त किया गया।

आम्रपाली 2/2 पौधे के फल में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 15.50 प्रतिशत प्राप्त किया गया इसमें अपचयित शकर्रा की मात्रा 1.42 प्रतिशत तथा अम्ल की मात्रा 9.065 प्रतिशत प्राप्त किया गया। आम्रपाली 8/7 पौधे के फल में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 19.70 प्रतिशत तथा अपचयित शर्करा की मात्रा 5.475 प्रतिशत तथा अम्लता की मात्रा 0.125 प्रतिशत प्राप्त किया गया। आम्रपाली 8/7 पौधे के फल में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 19.70 प्रतिशत तथा अपचयित शर्करा की मात्रा 5.475 प्रतिशत तथा अम्लता की मात्रा 0.125 प्रतिशत प्राप्त किया गया। पीले रंग के आम्रपाली 5/7 पौधे में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 10.500 प्रतिशत तथा अपचयित शर्करा की मात्रा 0.962 प्रतिशत तथा अम्लता 0.0925 प्रतिशत प्राप्त किया गया। आम्रपाली 7/5 में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 13.220 प्रतिशत तथा अपचयित शर्करा की मात्रा 13.200 प्रतिशत तथा अम्लता की मात्रा 0.138 प्रतिशत पायी गयी। आम्रपाली 8/7 में सम्पूर्ण शर्करा की मात्रा 19.700 प्रतिशत तथा अपचयित शर्करा की मात्रा 5.475 प्रतिशत तथा अम्लता की मात्रा 0.125 प्रतिशत पायी गयी।

गोवा में आम्रपाली जाति की लोकप्रियता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि गोवा पड़ोसी राज्यों की तुलना में फल उत्पादन की दृष्टि से श्रेष्ठतम है। तथा यहाँ पर उगाया फल की गुणवत्ता श्रेष्ठ पायी जाती है। आम्रपाली का उत्पादन कम समय में अधिक प्राप्त किया जा रहा है। संस्थान में आम्रपाली फलों की मांग सर्वाधिक है तथा फल स्थानीय बाजार में भी अच्छी कीमत प्राप्त करते हैं। स्थानीय निवासी भी मानकुराद और हिलारियो के साथ-साथ आम्रपाली की मांग समान रूप से कर रहे हैं। तथा संस्थान में आम्रपाली पौधों की अधिक बिक्री हो रही है। उत्तर भारत की यह संकर जाति गोवा में विशेष रूप से बहुत अच्छी प्र्दशन कर रही है और यह जाति गोवा की परिस्थिति में मई के पहले सप्ताह में पक कर तैयार हो जाती है, जोकि उत्तर भारत से एक माह पहले है। दशहरी तथा नीलम से संकरित यह जाति दशहरी के विशिष्ट गुण को भी दर्शाती है। इससे यह दशहरी खाने वाले आम के ग्राहकों की जरूरत पूरा कर सकती है। इस प्रकार से आम्रपाली का क्षेत्र फल प्रदेश में बढ़ाकर अधिक उत्पादन प्राप्त करके इसे यहाँ से उत्तरी भारत में समय से पहले भेजकर यहाँ के किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का किसी क्षेत्रीय
भाषा से कोई संघर्ष नहीं है।

– अनंत गोपाल शेवडे

पोषण एवं रोजगार में कन्द फसलों का महत्व

डॉ. एम. थंगम[1]

गोवा में कन्द फसलें

पिछले डेढ़ दशक से गोवा में सब्जियों के अधीन क्षेत्र 7,500 से 8,000 हेक्टेयर के आस-पास मँडरा रहा है। इसलिए 85 प्रतिशत से भी अधिक मात्रा कर्नाटक और महाराष्ट्र से आयात के माध्यम से पूर्ण किया जाता है। गोवा में शकरकंद, जिमीकंद या सूरन, चुपरी आलू, कचालू, अरबी और घुईया आदि कन्द फसलों की खेती खरीफ मौसम में बागानों में अंतर-फसल या एकल फसल के रूप में किया जाता है।

शकरकंद

यह गोवा का एक महत्त्वपूर्ण कंद फसल है जिसकी खेती प्रधान रूप में रबी मौसम के दौरान धान एकल फसल प्रणाली के अंतर्गत मिट्टी के अवशेष नमी से सुरक्षात्मक सिंचाई के साथ किया जाता है। गोवा में शकरकंद की कोई उन्नत किस्म नहीं है। गोवा के लिए एक महत्त्वपूर्ण कंद फसल का वर्ग होने के कारण इसमें उन्नत किस्मों का विकास अत्यावश्यक है। ज्यादा से ज्यादा कृषि क्षेत्र को इस फसल के अधीन लाना भी बहुत जरूरी है। गोवा के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के परिसर में इस फसल के उन्नत किस्मो के ऊपर कई प्रयोग किए गए हैं।

शकरकन्द

सूरन (जिमीकंद)

जिमीकंद या सूरन

यह एक महत्त्वपूर्ण कंद फसल है जो गोवा में खासकर गणेश चतुर्थी जैसे त्यौहारों के समय में अधिकतम मूल्य प्राप्त करता है। इस फसल को गोवा में व्यापक रूप से नारियल और सुपारी के बागों में अंतर-फसल के रूप में उगाया जाता है। ज्यादातर किसान स्थानीय किस्मों का ही खेती करते हैं और उन्नत उत्पाद तकनीकी का प्रयोग नहीं करते हैं। फलस्वरूप इस फसल की उत्पादन एवं उत्पादकता अन्य राज्यों के मुकाबले में काफी कम है। गोवा का एक महत्वपूर्ण कंद फसल होने के कारण इसको किसानों के बागानो में अंतर-फसल और ढ़लान प्रदेशों में एकल-फसल के रूप में लोकप्रिय करना ज़रूरी है। इस फसल के कई उन्नत प्रजातियाँ उपलब्ध है जिनको किसानों में प्रचलित करना ज़रूरी है।

1. वरिष्ठ वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

अरबी

अरबी

अरबी एक महत्त्वपूर्ण कंद फसल है जो ग्राहकों से अधिक मूल्य प्राप्त करता है। गोवा में इस फसल का क्षेत्रफल काफी कम है। वर्षा ऋतु में इस फसल के जंगली प्रजातियाँ विस्तृत रूप में पाए जाते हैं। इनको एकत्रित और संरक्षित करना ज़रूरी है। इन प्रजातियों को शोध से परखकर देखना पड़ेगा कि ये व्यापारीकरण के लिए उचित है कि नहीं।

घुईयाँ

घुईयाँ

गोवा में इसकी खेती काफी सीमित क्षेत्र में है जिस कारण यह कंद बाजार में काफी अधिक मूल्य प्राप्त करता है। ग्राहकों के बीच स्वाद के लिए इसकी काफी वरीयता प्राप्त है।

निष्कर्ष

गोवा में कई उष्णकटीबंध मूल और कंद फसलों की खेती की जाती है जिनमें शकरकंद, सूरन, अरबी, घुईयाँ, रतालू इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कम रख-रखाव की जरूरत और अधिक उपज वाले फसलो के अलावा ये गरीब किसानों के खाने और पौष्टिकता के महत्त्वपूर्ण अंश हैं। उपरोक्त तर्क-वितर्क से ये समझ आता है की कंद फसलों की उपज क्षमता का उचित उपयोग गोवा जैसे सब्जी की कमी वाले राज्य के कृषि प्रणाली के लिए अत्यावश्यक है। शकरकंद, सूरन, अरबी, रतालू, घुईयाँ जैसे महत्वपूर्ण कंद फसलों की खेती से इस राज्य के सब्जी की पैदावार को उभारा जा सकता है।

वर्तमान में प्रचलित कृषि प्रणाली जैसे काजू, सुपारी और नारियल के बागानों में अंतर-फसल के रूप में कंद फसलों की बडे क्षेत्रफल में उगाने का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाना होगा।

माड़ी

सुथनी

सूरन (जिमीकंद)

काटे कणंगा

गोवा के प्रमुख फलों का महत्व

डॉ. (सु.श्री.) एस. प्रिया देवी[1]

पश्चिमी घाट पर स्थित गोवा 3207 वर्ग कि. मी. की एक छोटी राज्य है। यहाँ जैव-विविधता एवं आनुवंशिक परिवर्तन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इस लेख में यहाँ उत्पन्न होनेवाले प्रमुख फलों के उत्पादन तकनीकी, इस्तेमाल के तौर तरीके, फूलने और फलने के मौसम आदि के बारे मे जानकारी दिया गया है।

कोकम (गार्सिनिया इन्डिका)

इस वृक्ष की प्रजातियाँ गट्टीफेरे परिवार के अंतर्गत है। यह पेड खेतों में, जंगलों में और नदी तट पर उपलब्ध हैं। इस फल को मसाले और औषधि के रूप मे उपयोग किया जाता है। ताजे फलों को स्क्वॉश, जूस, आर.टी.एस. पेय आदि के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके छिलके को सुखाकर पपडी के रूप में गोवा के विशेष मछली कड़ी में इस्तेमाल किया जाता है। इन घरेलू उपयोगों के अतिरिक्त कोकम अंतर्राष्ट्रीय औषधि व्यापार में उसमें उपलब्ध एच. सी. ए. के लिए मशहूर हो रहा है। यह तत्व मोटापा घटाने व मोटापा अवरोधन दवाइयों का प्रमुख सामग्री है। कोकम के बीज वसा के स्त्रोत हैं, जिनसे कोकम का मक्खन निकाला जाता है जो लिपस्टीक, फेस पैक एवं अन्य कॉस्मेटिक चीजों के उत्पादन में इस्तेमाल किया जाता है।

कोकम पेड स्वाभाविक रूप में बीज से अंकुरित होते हैं। ये पृथकलिंगी प्रकृति और फल परागण से विकसित होने के कारण आकार व भौतिक गुणों में काफी विविधता प्रकट करते है।

कटहल (ऑरटोकार्पस हेटिरोफिलस)

यह मोरेसिए परिवार का है और कुदरत में प्रचुर यात्रा में गोवा राज्य में पाया जाता है। मूल रूप में इसके दो प्रकार के इको-टाइप हैं। प्रथम कड़ा गूदा वाला और दूसरा नरम गूदा वाला है। कड़ा गूदा वाला फल के रूप में प्रयोग किया जाता है। लेकिन नरम गूदा वाले का प्रयोग मिष्ठान अथवा कटहल पापड़, चिप्स आदि के रूप में भी होता है।

1. वैज्ञानिक (फल विज्ञान), गोवा के लिए भा.कृषि अनु. परि. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

ब्रेडफ्रूट (ऑरटोकार्पस अल्टिलिस)

इस बारहमासी प्रजाति (मोरेसिए परिवार) के फल, सब्जी की तरह इस्तेमाल किए जाते हैं। यह पेड़ वैसे तो सालभर फल देते हैं लेकिन अधिकतम फल मार्च-अप्रैल और जुलाई-सितंबर में मिलते हैं। ब्रेडफ्रूट के पेड़ लगभग गोवा के हर घर के पिछवाड़े में पाए जाते हैं। इनकी प्रसारण नलियों एवं कलम से होने के वजह से इनमें विविधता ज्यादा नहीं पाई जाती है। परंतु थोड़ी बहुत विविधता फलों के आकार व माप में पाई जाती है। यह एक स्टार्चयुक्त फल है और गोवा के पाक शैली में अपना खास स्थान बनाया हुआ है। पके फलों को टुकडे करके इन्हें तला जाता है। गोवा के लोग इसको तले मछली की बराबर रुचि से सेवन करते हैं। इस फल का माड़ी शिशु आहार में इस्तेमाल किया जाता है।

करम्बोला (अवेरोहा करम्बोला)

यह प्रजाति ऑक्सालिडेसिए परिवार का है। यह मध्यम लंबाई का सदाबहार एवं बारमासी पेड तारे जैसे आकार के फल उत्पन्न करता है। यह प्रजाति बीज एवं कलम से प्रजनित किया जाता है। इस लिए इसके फल के स्वाद में मीठास की विविधता पाई जाती है। खट्टे और मीठे प्रकार के फलों में एक सुस्पष्ट अंतर पाया जाता है। खट्टे फल हरे रंग के और छोटे आकार के होते हैं, जबकि मीठे फल आकार में बड़े, गुदे भरे और पीले-हरे रंग के होते हैं और इनमें चीनी व ऐसिड का अनुपात काफी आकर्षक होता है। सूखे करमबोला की पपडी खट्टास पदार्थ के रूप में इस्तेमाल होते हैं और ताजे फल कड़ी और अचार में प्रयोग किए जाते हैं। मीठे ताजे फलों का प्रयोग डेजर्ट के लिए और जूस व स्क्वॉश में होता है।

बिलिम्बी (अवेरोहा बिलिम्बी)

ये करमबोला का निकट सम्बंधी है। यह एक सदाबहार, मध्यम ऊँचाई का बारहमासी पेड है, जिसमें हरे और मोटे ताजे बेलनाकार के फल सीधे तने या पुराने डालियों पर लगते हैं। ये गोवा के घरों के पिछवाडे में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। इसके फल खट्टास के पदार्थ के रूप में और अचार में इस्तेमाल होते हैं। इसके प्रजातियों में कम विविधता पायी जाती है।

आम्बडा/ हॉगप्लम (स्पोनडियाज पिनाटा)

यह प्रजाति एनाकारडीयेसिए परिवार का लंबा विशाल अर्ध झड़नेवाला पेड़ है जिसमें अण्डाकार हरे फल लगते है। ये पेड़ सड़कों के किनारे, पिछवाड़े और खेतों के मेडों पर पाए जाते हैं। इनमे दो प्रकार के फल लगते है एक खट्टा, जो बडे बीज वाले होते हैं और दूसरा मीठा जोकि पतले बीज वाले होते हैं। फल कड़ी बनाने के लिए एवं चटनी के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इन फलों को इनके खट्टास के लिए पसंद किया जाता है।

रुकम (फ्लॉकोरटिया जंगोमास)

यह फ्लॉकोरटिया परिवार के अंतर्गत आता है। यह एक बारहमासी सदाबहार पेड़ है जिसके प्रजाति तटवर्ती क्षेत्रों में पाए जाते हैं और पृथकलिंगी हैं। इसके पेडों के तन एवं पुरानी शाखाओं पर कांटे मौजूद होते हैं। इस वृक्ष के फल गहरे लाल/मरून रंग व छोटे आकार के होते हैं। इनमें कई खाने योग्य बीज होते हैं। इसके फल अक्तूबर से दिसम्बर महीने में पाए जाते हैं। पके फलों को उँगलियों के बीच दबाकर उसके गुदे को मुलायम बनाकर खाया जाता हैं। इसके गुदे का स्वाद खट्टा होता है। फलों के आकार, माप व किस्मो में काफी विविधता पाई जाती है।

एडम्स फ्रूट (मिमोसॉप्स कौकि)

यह फल एपोटेसिए परिवार के अंतर्गत है। यह एक मध्यम उँचाई का बारहमासी पेड है जिसमें एक से दो बीजों वाले हल्के भूरे रंग के फल लगते हैं। गुदा ज्यादा नरम नहीं होता है लेकिन बहुत मीठा होता है। इसको डेजर्ट के रूप में सेवन किया जाता है। आकार को छोडकर और कोई गुण में इसके प्रजातियों में विविधता नहीं पाई जाती है।

गुलाबी जाम (साईजिजियम प्रजाति)

यह मिरटेसिए परिवार के अंतर्गत है। ये मध्यम से अधिक ऊँचाई के बारहमासी पेड है जिनमें साल में दो बार जनवरी-फरवरी और अप्रैल-मई में फल लगते हैं। गोवा में इसके तीन प्रजाति साईज़िजिमम जॉमबोस (गोलाकार, हलके दूधिया - पीले रंग के बीजहीन फल), साईजिजियम मॉलासेन्स (अंडाकार लाल रंग के बीजहीन फल) और साईजिजियम समराजेन्स (नाशपाती आकार के हरा-पीला रंग के बीजहीन फल) पाए जाते हैं।

करौंदा (करैजा करॉंदास)

ये प्रजाति अपोसैनेसिए परिवार के अंतर्गत है। यह कँटीला झाड़ीनुमा सदाबहार और बारहमासी होता है, जिसमें बैगनी-काले फल अप्रैल-मई महीनो के बीच में फलते हैं। यह देशी पेड होने के कारण फल के माप एवं फलने के समय में काफी विविधता पायी जाती है। इसके फलों का अचार व चटनी बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। पके फलों को जूस व डेजर्ट के रूप में ग्रहण किया जाता है।

जामुन (साईजिजियम क्युमिनि)

यह एक बारहमासी पेड़ है जिसके प्रजाति मिरटेसिए परिवार के अंतर्गत हैं। ये अप्रैल-मई के महीने में गहरे बैगनी रंग के फल देते हैं। देशी पेड़ होने के कारण इसके प्रजातियों में फल के माप, आकार, रंग एवं जैव-रासायनिक गुणों में काफी विविधता पाई जाती हैं। ये पेड गोवा में काफी अनियमित एवं एकांतरी ढंग से फलते हैं। इसके फलों को ताजा और शरबत/जूस/मदिरा के रूप में सेवन किया जाता है। मे मधूमेह बीमारी के नियंत्रण के लिए भी आयुर्वेद एवं औषधीय उद्योग में इस्तेमाल किए जाते हैं।

यदि हिन्दी की उन्नति नहीं होती है
तो यह देश का दुर्भाग्य है।
– बंकिम चंद्र चटर्जी

गोवा के लिए संरक्षित खेती

डॉ. (सु.श्री.) मतला जूलियट गुप्ता[1]

संरक्षित खेती

संरक्षित खेती जाली (नेट), प्लास्टिक या कांच द्वारा निर्मित विशेष संरचना में की गयी फसलोत्पादन है, जिसमें वातावरण नियंत्रण की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसमें फसल की आवश्यकतानुसार आंशिक या संशोधित रूप से वातावरण को नियंत्रित कर सकते हैं। इसके ढांचे के लिए प्रयुक्त सामग्री के रूप में इस्पात, लकड़ी, बांस या एल्युमीनियम का इस्तेमाल होता है, जिससे इसके ऊपर वातावरणीय कारकों का प्रभाव नहीं पड़ता है। ढांचे के ऊपर शीशा या प्लास्टिक का आवरण चढ़ा दिया जाता है। आवरण के लिए अन्य प्लास्टिक पदार्थों जैसे पॉलीथीन, पी.वी.सी., फाइबर ग्लास, ई.वी.ए., पॉलिकार्बोनेट अथवा प्लास्टिक जाली या विशेष प्रकार की जाली जिसे शेड नेट कहते हैं, आदि का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः आवरण के लिए एक विशेष प्रकार का पॉलीथीन जो कि पराबैंगनी किरणों से स्थिरीकृत होती है, का उपयोग किया जाता है। आवरण के आधार पर ग्रीनहाउस को पॉलीहाउस, ग्लास हाउस, नेट हाउस या शेड नेट हाउस कहा जाता है।

ग्रीनहाउस में वातावरण को आवश्यकतानुसार नियंत्रित किया जा सकता है, जिसमें तापमान, आर्द्रता और प्रकाश मुख्य हैं। कार्बन डाइआक्साइड, मृदा और पोषक तत्वों के स्तर का भी नियंत्रण किया जा सकता है। हाई–टेक ग्रीनहाउसों में वातावरण के लिए संगणकों की सहायता भी उपयोगी सिद्ध हुई है।

प्रारंभ में ग्रीनहाउस का उपयोग ठंडी जलवायु वाले देशों तक ही सीमित थी, किन्तु कालान्तर में इनका उपयोग गर्म, रेतीले व अतिवृष्टि वाले क्षेत्रों में भी किया जाने लगा है। वातानुकूलन की सुविधा के कारण न केवल वर्षभर फसल उत्पादन संभव है, बल्कि ग्रीनहाउस के अंदर उगाई गयी फसल की उत्पादकता सामान्य उत्पादकता की तुलना में कई गुना बढ़ाना भी संभव हुआ है।

गोवा राज्य के लिए ग्रीनहाउस की उपयोगिता

देश के विभिन्न क्षेत्रों में ग्रीनहाउस पद्धति का उपयोग करके वर्ष भर फसलों का उत्पादन संभव है। देश के उत्तरी भाग में पारंपरिक खेती के लिए वर्ष के कुछ ही महीने अनुकूल रहते हैं, अतः इन क्षेत्रों में ग्रीनहाउस के अन्दर फसलोत्पादन

1. वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं प्रसंस्करण अभियांत्रिकी), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में जहाँ भारी वर्षा होती है, वहाँ भी इस तकनीकी के प्रयोग से फसलोत्पादन, खासतौर से फूलोत्पादन सम्भव है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में भी इस तकनीकी के द्वारा आवश्यक फसलोत्पादन किया जा सकता है।

गोवा की कृषि जलवायु पश्चिमी घाटी और तटीय सादा, गर्म नम एवं परह्युमिड पर्यावरण क्षेत्र में आती है। यह कोंकण जैव–विविधता का एक हॉट स्पॉट है। गोवा भारत की एक मुख्य पर्यटन राज्यों में से है, जहाँ होटलों में अंतदेर्शीय पर्यटको की आवभगत के कारण फूलों एवं विदेशी सब्जियों की काफी मांग है। इन फूलों और सब्जियों को अधिकतर रूप से पड़ोसी राज्यों से लाया जाता है। ग्रीनहाउसों के माध्यम से इन फसलों का उत्पादन गोवा में करके किसान काफी मुनाफा पा सकते है।

ग्रीनहाउस के अंदर, सब्जियाँ खासतौर से टमाटर, चैरी टमाटर विभिन्न रंगों के शिमला मिर्च, सेम, हरी प्याज, सलाद, सेलेरी, लेट्यूस, मटर, बैंगन, भिंडी, पालक, कद्दू, मूली आदि बेमौसम या वर्षा के समय उगाई जा सकती हैं। होटलों में सालभर इनकी मांग बनी रहती है। इसी प्रकार ग्रीनहाउस में गुलाब, कार्नेशन, गुलदाउदी, पाइनसीटिया, बिगोनिया, जरबेरा आदि सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। स्ट्राबेरी खरबूजा एवं तरबूजे का उत्पादन भी संभव है। इसके अतिरिक्त ग्रीनहाउस का उपयोग फल वृक्ष प्रवर्धन में भी सफलतापूर्वक होता है। फूलों व सब्जियों की पौध तैयार करने की लिए भी यह एक उत्तम तकनीकी है। ग्रीनहाउस में पौध तैयार करने के लिए यह एक उत्तम तकनीकी है। ग्रीनहाउस के अंदर सब्जियों की पौध तैयार करके उन्हें मुख्य मौसम से एक–डेढ़ माह पूर्व खेत में रोपित किया जा सकता है, जिससे बाजार में शीघ्र उत्पाद भेजे जा सकते है।

सामान्य संरचना

ग्रीनहाउस के ढांचे को धातु के पाइप, बांस अथवा लकड़ी से बनाते है। जस्सीकृत इस्पात एवं एल्युमीनियम धातुओं का सामान्य तौर पर उपयोग होता है। इस ढांचे को किसी उपयुक्त पारदर्शी प्लास्टिक, नेट, शेडनेट या कांच की चादर से ढ़का जा सकता है, जिससे ग्रीनहाउस की फसल के लिए समुचित सौर ऊर्जा उपलब्ध हो। आमतौर पर ऐसे ग्रीनहाउस पर जिसका ढांचा धातु का हो, लागत लगभग 1000 से 1500 रु. प्रति वर्ग मीटर आती है। वातारण नियंत्रण के लिए आवश्यक उपकरणों की लागत स्थान और फसल पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए जिन स्थानों पर गर्मी का मौसम लंबा होता है और सर्दी अधिक नहीं पड़ती, वहाँ ग्रीनहाउस में शीतलन यंत्र की ही आवश्यकता होती है। इसी तरह जहाँ सर्दी अधिक पड़ती है, वहाँ ग्रीनहाउस में ऊष्मन यंत्र का उपयोग वांछित है। कुछ स्थान ऐसे होते है जहाँ न अधिक गर्मी और न अधिक सर्दी पड़ती है, ऐसे स्थानों पर संवातन की समुचित व्यवस्था से ही काम चल सकता है।

ग्रीनहाउस की आकृति भिन्न प्रकार की हो सकती है, लेकिन ज्यादातर गेबल और अर्धबेलनाकार आकृतियों का उपयोग होता है। बड़े क्षेत्र में बनाने के लिए बहुस्तरीय आकृतियों का उपयोग करते हैं।

वातावरण नियंत्रण

ग्रीनहाउस का ढांचा व आवरण इसके वातावरण को बाहर के वातावरण से पृथक करते हैं। अब ग्रीनहाउस के वातावरण का नियंत्रण आसान हो जाता है। मौसम और फसल की आवश्यकता के अनुसार ग्रीनहाउस के वातावरण का तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा आदि को अपेक्षित स्तर पर नियंत्रित किया जा सकता है। आमतौर पर किसी भी ग्रीनहाउस में संवातन की व्यवस्था आवश्यक है। यह संवातन प्राकृतिक अथवा यांत्रिक हो सकता है। जिससे तापमान, आर्द्रता और कार्बन डाइआक्साइड तीनों ही प्रभावित होते हैं। प्रकाश की मात्रा तो सौर ऊर्जा से ही पूरी हो जाती है। तापमान नियंत्रण के लिए शीतलन तथा ऊष्मन यंत्रों का उपयोग वांछित है। गोवा राज्य में अप्रैल एंव मई महीनों को छोड़कर अन्य महीनों में प्राकृतिक संवातन एवं छाया परदों (शेट नेट) के इस्तेमाल से तापमान, आर्द्रता और कार्बन डाइआक्साइड का नियंत्रण संभव है। ग्रीनहाउस अगर ऐसे क्षेत्र में उपस्थित है जहाँ हवा कम चलती है या हवा के बहाव को कोई बाधा है तो यांत्रिक रूप से विद्युत पंखों से वातावरण को नियंत्रित किया जा सकता है। अप्रैल एवं मई के महीनों में फब्बारौ और विद्युत पंखों आदि से वातावरण को अनुकूल बनाया जा सकता है। अगर उच्च मूल्य के फसल उगाये जाते है तो हम फेन–पेड़ या एयरकंडीशनर से भी शीतलन की प्रक्रिया को कर सकते हैं।

एक पॉलीथीन फिल्म से ढ़के जस्तीकृत इस्पात के ढांचे वाले ग्रीनहाउस जिसमें शीतलन यंत्र का उपयोग हुआ है, के निर्माण में 1500–2000 रू. प्रति वर्ग मीटर का खर्च आंका गया है।

ग्रीनहाउस के लिए उपयुक्त फसलें

ग्रीनहाउस में उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियाँ, टमाटर, चेरी टमाटर, ककड़ी, सम्मर स्क्वॉश, जुक्किनी, लैट्यूस/सलाद, पत्तागोभी, सेम, मटर, पालक, शिमला मिर्च, मूली आदि हैं। इनसे वातावरणीय कारकों जैसे वर्षा, तापमान आदि के कुप्रभाव से बचाव हो सकता है, जिससे अच्छी गुणवत्ता वाले उत्पादन प्राप्त होते हैं। ग्रीनहाउस के अन्दर सब्जियों की तुड़ाई का समय बढ़ाया जा सकता है।

ग्रीनहाउस के अन्दर राज्य में भा. कृ. अनु. प. के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. थंगम ने जेरबेरा एवं अन्यूरियम के उत्पादन को लाभदायक पाया है। इसके अलावा उत्तम स्तर के गुलाब, गेंदा आदि फूलों का भी उत्पादन ग्रीनहाउस में संभव है। उनके अनुसार गोवा में पॉलीहाउस में 6.5 टन प्रति हेक्टेयर शिमला मिर्च व फूलों में जेरबेरा में करीब 17 लाख फूल प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर एवं अन्थूरियम में 5.5 लाख फूल प्रति हेक्टयर प्रति वर्ष का उत्पादन होता है।

आर्थिक विश्लेषण

संरक्षित खेती के निर्माण में जो लागत आती है, उसमें सरंचना की लागत, आवरण की लागत, टूट–फूट की मरम्मत एवं रख–रखाव सम्मिलित हैं। इसके साथ विद्युत खर्च एवं खेती की लागत मिलाकर 500–1000 रूपये प्रति वर्ष प्रति वर्ग मीटर का व्यय आता हैं। टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च आदि के शुद्ध आय को मिलाकर आर्थिक विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया है कि लागत वापसी की आंतरिक दर 35 प्रतिशत से अधिक है। फसल उत्पादन की इस पद्धति का आय–व्यय अनुपात भी काफी अधिक है। इस परियोजना की लागत पूर्ति का समय 2–5 वर्ष तक है। इसके अलावा संरक्षित खेती में नर्सरी तैयार करके पौध को भी अच्छे मूल्यों पर बेचा जा सकता है तथा साथ फूल व फल वृक्ष प्रवर्धन और उत्पादन से भी अच्छा लाभ कमाया जा सकता है।

पपीता की उन्नतिशील खेती

दीप कुमार[1], शशि विश्वकर्मा[2], डॉ. राज नारायण[3]

कृषि का भारत की अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा योगदान है। यह देश की लगभग दो तिहाई जनसंख्या की आजीविका प्रदान करता है। भारत देश के बागवानों की खुशहाली का रास्ता बाग–बगीचे से होकर गुज़रता है। फल धरती पर कुदरत का अनोखा करिश्मा है। कुदरत ने फलों को मनुष्य को स्वस्थ, सुन्दर एवं खुश रखने हेतु बनाया है।

भारत विश्व में फलोत्पादन के क्षेत्र में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। परन्तु जहाँ जनसंख्या की अधिकता के कारण भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 110 ग्राम फल खाना चाहिए, फलों की औसत उपलब्धता 60 ग्राम है, जो भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली के अनुसार 50 ग्राम कम है।

पपीता फल को ट्री मेलन कहा जाता है। इसका पेड़ शीघ्र बढ़ने वाला, सीधा, शाखा रहित एवं जल्दी फल देने वाला है। पपीता को सर्वप्रथम 1661 में पुर्तगीज ले आये थे, बाद में पूरे देश में उगाया जाने लगा। इसका मूल जन्म स्थान अमेरिका का उष्णकटिबन्धीय भाग है।

उपयोग

(क) कच्चे फल को सब्जियों के रूप में खाते हैं।

(ख) यह फल पाचनशक्ति के साथ पाइल्स एवं लीवर के लिए बहुत उपयोगी होता है।

(ग) इस फल का उपयोग जैम, जैली, नैक्टर, पेय पदार्थ, टूटी फ्रूटी एवं अचार बनाने में किया जाता है।

(घ) पपीता के फलों से प्राप्त बीज का दवाई (औषधि) बनाने में काम आता है।

(ङ) कच्चे फलों के दूध से पपेन तैयार किया जाता है।

1. प्रक्षेत्र प्रबंधक, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
2. कार्यक्रम सहायक, (प्रयोगशाला तकनीकी) कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
3. कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

जलवायु

पपीता एक उष्ण कटिबन्धीय फल है और कटिबन्ध की लगभग सभी जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसका 1000 से 1200 मी. तक अधिकतम ऊंचाई पर खेती की जा सकती है। पपीता का 22–26^{0}C अनुकूल तापमान है। पाला से 43^{0}C से कम तापमान में इसकी फसल को नुकसान पहुँचाता है तथा पाले एवं तेज हवा से बचाने के लिए वायुरोधक वृक्ष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

पपीता के लिए मृदा (भूमि) का चुनाव

पपीते की खेती दोमट भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है जिसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होने के साथ–साथ 6 पी.एच. (pH) वाली मृदा और उचित निकास हो। जल ठहराव की स्थिति में गलन रोग होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

पपीता की उन्नत किस्में

प्रजातियों का चयन करते समय सबसे ज्यादा सावधानी बरतनी चाहिए। एक गलती से पूरे फसल में काफी नुकसान हो सकता है क्योंकि पपीता के बीज में काफी मिलावट होती है। बेहतर बीज किसी विश्वसनीय सरकारी फार्म, एजेन्सी एवं रजिस्टर्ड संस्था से ही खरीदें क्योंकि ज्यादा पुराना बीज नहीं जमता है, या इसकी अंकुरण क्षमता कम होती है।

आई.सी.सी.एस. बुलेटिन 'हार्टिकल्चर' के अनुसार चार क्षेत्र विभाजित किये गये है और प्रत्येक क्षेत्र के लिए पपीते की उचित प्रजातियाँ निम्नवत हैं, जो वहाँ अधिक सफल हैं–

पश्चिमी भारत के लिए	–	वाशिंगटन हनीड्यू, गुजराती
दक्षिण भारत के लिए	–	को.–1, कूर्गहनीड्यू, वाशिंगटन लॉन्ग एवं राउण्ड
पूर्वी भारत के लिए	–	सीनोनीन राउड, साथ अफ्रीका, राँची, हनीड्यू एवं वाशिंगटन
उत्तरी भारत के लिए	–	कूर्ग हनीड्यू, सहारनपुर सेलेक्शन एवं वाशिंगटन

पूसा मेजेस्टी : यह एक मादा एक लिंगाश्रयी (गाइनोडॉयोसियस) प्रजाति है। इसका फल जमीन की ऊँचाई से लगभग 45 से.मी. से आना शुरू होता है क्योंकि 245 दिनों में फल आना शुरू हो जाता है।

पूजा जायंट : यह एक पृथक लिंगी प्रजाति है। इसका पौधा 1 मीटर की ऊँचाई में फल देना आरम्भ करता है तथा पौधा लगाने के 260 दिन में फलने लगता है। इस प्रजाति के फल का आकार लगभग 2.5 से 3.5 कि.ग्रा. तक होता है। इस प्रजाति के फल सब्जियों एवं प्रसंस्करण के लिए उपयोगी है।

पूसा ड्वार्फ : यह एक पृथकलिंगी प्रजाति है। इसका पौधा (ड्वार्फ) कम ऊँचाई का होता है। यह जमीन की 40 से.मी. ऊंचाई से फलना आरम्भ करता है एवं पौध लगाने के 235 दिनों के बाद फल आना प्रारम्भ होता है। एक फल का वजन 1.2 कि.ग्रा. होता है एवं यह एक सघन बागवानी हेतु उपयुक्त किस्म है।

पूसा नन्हा : यह भी एक पृथकलिंगी प्रजाति है जो भा.कृ.अनु.प. के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र पूसा बिहार से विकसित किस्म है। यह भी सघन बागवानी के लिए एवं गमले में आसानी से उगाया जा सकता है। इसका 1.25 मी. × 1.25 मी. से 6400 पौधा प्रति हेक्टेयर लगता है एवं औसत उत्पादन 60–65 टन प्रति हेक्टेयर होता है।

अर्का प्रतिभा : यह प्रजाति भारतीय उद्यान संस्थान, बंगलौर द्वारा विकसित की गयी है। इसके फल का औसत उत्पादन 1.2 कि.ग्रा. से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है। यह एक लिंगाश्रयी प्रजाति है। इसका फल गोल से लेकर अण्डाकार आकार का होता है। इसका फल जमीन से 55 से.मी. पर आना शुरू हो जाता है। इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी है और औसत उत्पादन 90 से 100 किलो प्रति पेड़ है।

को 1 : इस प्रजाति का फल खान के लिए उपयुक्त है। फल का वजन 1.5 से 2.25 कि.ग्रा. एवं औसत उत्पादन प्रति वृक्ष 25–30 कि.ग्रा. होता है।

को 6 : यह एक लिंगाश्रयी प्रजाति है। यह फल तथा पपेन उत्पादन के लिए उपयुक्त है। पपेन का उत्पादन 7.8 ग्राम प्रति पेड़ होता है।

अर्का सूर्या : यह प्रजाति भारतीय उद्यान संस्थान बंगलौर द्वारा विकसित की गयी है। यह एक लिंगाश्रयी प्रजाति है। इस फल की भण्डारण क्षमता अच्छी है और पैदावार 50 कि.ग्रा. से 60 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष होता है।

बीज दर

पृथक लिंगी प्रजाति के लिए 400 से 500 ग्राम और एक मादा या एक लिंगाश्रयी (गाइनोडॉयोसियस) प्रजाति के लिए 200 से 300 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर के लिए उपयुक्त होती है।

खेती की तैयारी

उद्यान को तैयार करने के लिए सर्वप्रथम पहली गहरी जुताई की जाती है तथा इसके पश्चात् देशी हल या हैरो की कई जुताई करें ताकि उद्यान की मृदा भुरभुरी हो जाये। इसके पश्चात् 60×60×60 से.मी. के गड्ढ़े खोद कर आधी मिट्टी एक तरफ निकाल कर ऊपरी भाग की मृदा में आधा भाग मिट्टी+आधा कम्पोस्ट+नीम केक एवं ट्राइकोडर्मा 50 ग्राम प्रति गड्ढ़ा डालकर भर दें। गड्ढ़े भरने के 15 दिन पश्चात् पौधा लगाने योग्य हो जाते हैं।

पौधा लगाने का समय एवं दूरी

पूसा नन्हा ड्वार्फ प्रजाति के लिए	1.2 × 1.2 × 1.2 मी. (50 से.मी. × 50 से.मी. × 50 से.मी.)
ड्वार्फ प्रजाति के लिए	1.8 × 1.8 अथवा 2.0 × 2.0 मी.
अधिक ऊँचाई प्रजाति के लिए	2.4 × 2.4 मी. उचित दूरी रखनी चाहिए

सामान्यत: पौधे लगाने का समय मानसून के शुरू होने के बाद होता है। यदि पानी का उचित प्रबन्ध है तो सितम्बर–अक्टूबर एवं फरवरी–मार्च महीने में सफलतापूर्वक पौधा लगाया जा सकता है। पपीता में प्रति गड्ढा 2–3 पौध लगाते हैं। पौधे में फल आना प्रारम्भ होने पर ही नर एवं मादा पौधे की पहचान हो पाती है।

खाद एवं उर्वरक

गड्ढों में मिट्टी के साथ खाद का मिश्रण 20–25 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 2 किलो हड्डी का चूरा एवं नीमकेक (पाउडर) मिलाकर गड्ढे में अच्छी प्रकार भर दें। एक वर्ष पेड़ को 40–50 किलो गोबर की खाद एवं 200 ग्राम नत्रजन,

100 ग्राम फास्फोरस एवं 250 ग्राम पोटाश को दो बराबर भागों में बांटकर प्रथम भाग जनवरी–मार्च एवं द्वितीय भाग सितम्बर–अक्टूबर माह में दिया जा सकता है और अच्छी पैदावार लिया जा सकता है।

सिंचाई

पौधे को लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करना और इसके बाद सिंचाई की आवृत्ति मृदा की नमी पर निर्भर करता है। टपक सिंचाई करने से अधिक पैदावार एवं कम पानी लगता है। वर्षा ऋतु में पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन जब पौधा फरवरी–मार्च एवं सितम्बर–अक्टूबर में लगाया जाता है तो पानी देने की आवश्यकता पड़ती है।

नर पौधो को निकालना

जब पौधे में फूल आना शुरु हो जाता है सभी नर एवं मादा फूलों की पहचान आसानी से कर सकते है, पृथकलिंगी प्रजाति में 5–10 प्रतिशत पौधों को परागण के लिए छोड़ देते है। यदि मादा एक लिंगाश्रयी (गाइनोडॉयोसियस) हो तो प्रति गड्ढ़ा एक मादा पौधा रखना चाहिए और बाकी सब निकाल देना चाहिए।

अर्न्त–फसले

पपीता के दो पंक्तियों के बीच में विभिन्न सब्जियाँ लगायी जा सकती है। पत्तागोभी, फूलगोभी, टमाटर, बैंगन, चौलाई इत्यादि फसलें लगायी जा सकती है। इसके साथ फूल जैसे गेंदा एवं मौसमी फूल भी लगाये जा सकते हैं।

उपज

पपीता जल्दी फल देने वाला पेड़ है। उष्णकटिबंधीय मौसम में 9–10 महीने और उपोष्णकटिबंधीय मौसम में 10–15 महीने में फल पकने लगते हैं। जब फल पर हल्का पीला रंग आना शुरू होता है तो फल तुड़ाई के लिए उपयुक्त होता है लेकिन कुछ प्रजाति हरे रंग की अवस्था में पक कर तैयार हो जाती हैं। स्वस्थ पौधे से देश के विभिन्न हिस्सों में 350–750 कुन्तल प्रति हेक्टेयर उत्पादन मिलता है। प्रति वृक्ष 20–50 फल प्राप्त होते हैं एवं प्रति वृक्ष 20–50 कि.ग्रा. औसत उत्पादन मिलता है।

गा सके खगो सा मेरा कवि
विश्री जंग की संध्या की छवि
गा सके खगो सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात फिर आए रवि।

– सुमितात्रानंद पंत

हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति
का प्रमुख स्रोत है।

– सुमित्रानन्दन पंत

दुधारू पशुओं के लिए आवास प्रबंधन

डॉ. एस. के. दास[1]

डेरी आवास प्रणाली का पशुधन के समग्र स्वास्थ्य और दीर्घायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आवास प्रणालियाँ चारागाह आधारित से बदलकर सीमित, खुले अभिगम के साथ अन्तर्वासी – प्रणाली में बदल रहे हैं। आवास प्रबंधन, वास्तविकता में आवास प्रबंधन पशु पर्यावरण के नियंत्रण द्वारा मांस, दूध और ऊन के उत्पादन दक्षता को बढावा देने के लिए है। पर्यावरण तनाव और रूपान्तरों को बेहतर रूप से समझने से प्रबंधकीय क्षमताओं में वृद्धि हो सकती है। ऊष्मा तनाव को सुधारने के लिए सकारात्मक एवं नकारात्मक गुणवत्ता पूर्वक कई प्रबंधन प्रथाएँ उपलब्ध हैं। आवास पर्यावरणीय मानकों पर सबसे संभावित नियंत्रण प्रदान करता है, लेकिन अपेक्षाकृत इसमें प्रति पशु उच्च निवेश लागत होता है। छायादानों के सही योजना से वायु संचार को अधिकतम करके और सौरभार से सुरक्षा प्रदान करके पशु आराम और उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। गोवा में पशुधन को स्टालों में खिलाकर अर्ध गहन प्रणाली के अंतर्गत रखा जाता है। गाँव में डेयरी गायों को कंकरीट / ईट के फर्श और जस्ती लोहे / एस्बेस्टस शीट के छत वाले खुले आवास में रखा जाता है। वर्तमान समय में गाय के आराम पर ध्यान केन्द्रित है, जिससे दूध उत्पादन को बढ़ाया और पशु स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को कम किया जा सकता है। अतः डेयरी आवासों को इस तरह होना चाहिए की गायों को अधिकतम आराम और न्यूनतम जल वायु संबंधी – तनाव होना चाहिए, जिससे उत्पादकता को बढ़ाकर डेयरी से अधकतम आमदनी पाया जा सके।

आवास प्रणाली

सरकारी, सहकारी एवं सेना के कुछ संगठित डेयरी फार्मो को छोडकर, जहाँ उचित आवास की सुविधा उपलब्ध है, देश में अन्य जगहो पर गाय को रस्सी से कच्चे फर्श पर बाँधने की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित है। डेयरी पशुओं को दुहने के समय में थोडी प्रतिबंध से लेकर पूर्णतया बन्द अवस्था में रखने जैसी विविध आवास प्रणालियों का सफलतापूर्वक पालन किया जाता है। हालांकि डेयरी आवास के दो प्रकार सामान्य रूप से वर्तमान समय में उपयोग किए जाते हैं।

(i) खुली आवास

यह आवास की एक प्रणाली है जिसमें पशु को दुहने और उपचार के दौरान छोड़कर बाकी सब समय खुला छोड़ा जाता है। यह पारंपरिक प्रथा की तुलना में निर्माण के लिए कम लागत के कारण बहुत किफायती है। इस प्रणाली में पशुओं को स्वतंत्र रूप से छोड़ दिया जाता है। केवल रात को, दुहने या उपचार के समय उनको शेड़ में लाया जाता है। अतः पशुओं को बढ़िया स्वास्थ्य, उत्पादन एवं प्रजनन के लिए पर्याप्त व्यायाम मिलता है।

1. प्रधान वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन प्रबंधन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

(ii) पारंपरिक डेयरी खलिहान

यह प्रणाली, खुली आवास प्रणाली के तुलना में निर्माण में अधिक लागत के कारण महँगा है। लेकिन इस प्रणाली में पशु जलवायु संबंधी तनाव के प्रतिकूल प्रभाव से संरक्षित है। इस प्रणाली में गाय, प्रजनन, बछडे, बैल और रोग ग्रस्त पशुओं के लिए अलग शेड और संग्रहालय आदि का निर्माण किया जाता है। कम गायों (20) के लिए गौशाला एकल पंक्ति में और 10 – 40 गायों के लिए दो पंक्ति में व्यवस्थित किया जाता है। आमतौर पर 80 – 100 गाम एक शेड में नहीं रखे जाते हैं। दोहरी पंक्ति के प्रणाली में गायों को चेहरा बाहर, यानि पूंछ से पूंछ मिलाकर या चेहरा अन्दर यानी, चेहरे से चेहरा मिलाकर रखा जाना चाहिए। पँछ से पूँछ मिलाकर रखने की प्रणाली में गायों को बाहर से अधिक स्वच्छ हवा, रोगों के प्रसार का कम मौका और चौडा मध्य गली मिलता है जिससे गायों को दुहने में और सफाई आदि में अधिक सुविधा प्राप्त होती है। चेहरे से चेहरा मिलाने की प्रणाली में सिर्फ गायों को खिलाना आसान हो जाता है।

फर्श

गाय के शेड की फर्श को ऐसे अभेद्य वस्तु से बनाना चाहिए जिसको आसानी से साफ सूखा और फिस्लन रहित रखा जा सकता है। फर्श के ढलान को नाली की तरफ होना बहुत जरूरी है जिससे पानी का निकास आसानी से हो सके। नमी से बचने के लिए और शेड का स्वास्थ्यकर अवस्था बनाए रखने केलिए पानी, गोबर और मिट्टी को फर्श पर इकठ्ठा होने नहीं देना चाहिए।

छत

गौशाला का छत एस्बेस्टस या जस्तीकृत लोहे के शीट का हो सकता है। गटर पर 3 मी. और रिड्ज पर 4 मी. की ऊँचाई शेड को हवादार बनाने केलिए पर्याप्त है।

दीवार

दीवार के अन्दर के सतह को सीमेंट से और बिना चिकना एवं सख्त होना चाहिए जिससे उस पर धूल और नमी जमा नहीं होंगे। कोनों को गोलाकार होना चाहिए। दीवार की ऊँचाई लम्बे साइड पर 1 मी. और छोटे साइड पर 3–4 मी. होना चाहिए। छत को कम ऊँचाई वाले दीवार पर 1.5 मी. के अंतराल पर कंकरीट के स्तम्भ से या जस्तीकृत लोहे के पाईप से सहारा देना चाहिए।

स्टॉल की योजना

गौशाला के स्टॉलों की योजना दो प्रकार की होती है :

अ) **स्टॉनशिऑन खलिहान :**

इसमें गाय को स्थान में बाँधने केलिए एक स्टॉनशिऑन या पाईप का बना खम्भा है। आमतौर पर स्टॉलों के बीच एक गुमावदार पाईप गायों को जगह पर बाँधने के लिए और उनके थन एवं चूसनियों पर दूसरे गाय के पैर रखकर क्षति न पहुँचाने केलिए होते हैं।

आ) **टाई स्टॉल :**

इस स्टॉल की योजना गायों को अधिक आराम एवं स्वतंत्रता से हिलने डुलने केलिए किया गया है। स्टॉनशिऑन के स्थान पर गाय के गर्दन की दोनों तरफ दो मेहराब हैं। गाय एक कट्टर पाईप पर जंजीर से जुडे ढीले फिट रिंग के माध्यम से बंधा हुआ है।

चरनी

एक व्यस्क गाय के लिए 1– 1.5 मी. विभाजित सीमेंट कंकरीट का चरनी पर्याप्त है। इसकी चौढाई 0.5 – 0.75 मी. होनी

चाहिए। चरनी के आगे और पीछे की ऊँचाई 0.5 मी. और 1.0 मी. होनी चाहिए। आगे कम ऊँचाई (0.25 मी.) वाली चरनी गाय के चारा खाने के लिए सुविधाजनक है, परंतु आगे ज्यादा ऊँचाई वाले चरनी से चारे (0.5 मी .) की अपव्यय कम होता है।

गली

पूँछ से पूँछ मिलाकर रखने की प्रणाली में केन्द्रीय गली की चाडाई 2 मी. और चेहरे से चेहरा मिलाकर रखने की प्रणाली में 1.5 मी. होनी चाहिए। केन्द्रीय गली की ढलान समानांतर पर चलनेवाली दो नालियों की ओर होनी चाहिए।

नाली

नाली की चौड़ाई और गहराई गोबर को बिना अटके बहने एवं आसानी से साफ करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। नाली की चौडाई 1.5 फीट एवं गहराई 1 फीट होना चाहिए।

गर्म क्षेत्रों में डेयरी आवासों की निम्नलिखित महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं :

अ) **प्रत्यक्ष सौर विकिरण का उन्मूलन :** यह अति आवश्यक है क्योंकि पशु पर दोपहर के धूप से विकिरण उष्मा का भार उसके चयापचम उष्मा से कई गुना ज्यादा होता है।

आ) **अप्रत्यक्ष विकिरण को न्यूनतम दर तक घटाना :** इस के लिए आसपास के इमारतों, कड़ी के भारी बाड़ आदि वस्तुओं को हटाना चाहिए जो ऊष्मा को अवशोषित करके पशुओं पर विकिरण करते हैं।

इ) **जानवरों के ऊपर से संवहनीय और बाश्पिकरनीय प्रक्रिया से होने वाली उष्मा बहाव को सहूलियत देना :** जानवरों की सतह से हवा के संचार द्वारा प्राकृतिक रूप से उष्मा और नमी के बहाव को सहूलियत देना चाहिए।

ई) **आसानी से उपलब्ध पीने का पानी :** पीने के पानी निकट उपलब्ध होना चाहिए ताकि जानवरों को धूप में जाकर पानी पीने की ज़रूरत न पड़े।

अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबंधु तो हो गया
किन्तु भारतबंधु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूँगा।
– बंकिम चन्द्र चटर्जी

हमारा देश हिन्दुस्तान
हमारा गीत वंदेमातरम्
हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी
– वीर सावरकर

दुधारू जानवरों का रोग एवं रोकथाम -भाग-१

डॉ. एस. बी. बारबुद्धे[1]

दुधारू जानवरों के कई मुख्य रोग है, जिनके मुख्य लक्षण न जानने के कारण डेयरी कृषकों को उत्पादकता में क्षति एवं नुकसान भुगतना पड़ता है। इस लेख में दुधारू जानवरों में पायी गयी चार प्रमुख रोगों के कारण, लक्षण एवं उपचार का उल्लेख किया गया है।

1. दुग्ध ज्वर (मिल्क फीवर)

इस रोग में पशु को कोई बुखार (ज्वर) नहीं होता लेकिन इसमें मादा पशु प्रसव के तुरन्त बाद या तीन दिनों के भीतर मूर्छित हो जाती है। यह रोग अधिक दूध देने वाले पशुओं को होता है जिनका स्वास्थ्य बहुत बढ़िया रहता है और व्यायाम कम होता है। यह रोग गायों, भैंसों और बकरियों में होता है।

कारण

इस रोग का सही कारण अभी तक ज्ञात नहीं है किन्तु, निम्न कारण मुख्य समझे जाते हैं।

1. रक्त में कैल्शियम की कमी
2. प्रसव के पूर्व कई महीनों के आहार में कैल्शियम नहीं या कम मात्रा में होना
3. प्रसव के बाद के दूध में कैल्शियम का अधिक मात्रा में निकलना
4. विटामिन डी. की कमी
5. रक्त में कैल्शियम और फॉसफोरस का स्तर बिगड़ना
6. उत्तेजना से
7. अधिक परिश्रम और थकान
8. व्यायाम की कमी

लक्षण

रोग के आरम्भिक लक्षण प्रसव के 12 से 72 घण्टों के अन्दर दिखाई देते हैं। पशु उत्तेजित जैसा, आँखे डरावनी सी, पूँछ ऐंठना, काँपना, सिर को हिलाना, जीभ का बाहर निकलना, दांत कटकटाना, पिछले पैरों में कड़ापन, लड़खड़ाना और चारा दाना छोड़कर चलना फिरना पसन्द नहीं करती है। दूसरी अवस्था में पशु बेहोश हो जाता है और अपना सिर मोड़कर छाती पर रख लेता है या आगे की ओर खींचकर भूमि पर रख देता है। अंग को लकवा मार देता है या लचीला हो जाता है। आँखें

1. वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु चिकित्सक एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

सुस्त, पुतलियाँ फैली हुई और आँख की भीतरी झिल्ली लाल हो जाती है। मुँह शुष्क हो जाता है। खाना पीना बंद कर देती है। ज्वर नहीं रहता है। आमतौर पर तापमान सामान्य से कम हो जाता है। कान झुक जाता है। कब्ज और थोड़ा अफरा भी हो जाता है। पेशाब भी बन्द हो जाता है। यदि कोई उपचार नहीं किया जाय तो तीन चार दिनों में पशु मर भी सकता है। उपचार करने पर पशुओं को होश आने लगता है और वह धीरे–धीरे उठने लगता है। आराम होने पर पशु कुछ ही मिनटों में खड़ा हो जाता है लेकिन कमजोरी बहुत दिनों तक बनी रहती है।

संक्षेप में

(i) प्रसव के 1–3 दिनों के अन्दर अधिक दूध देने वाली पशु को दूसरी या तीसरी या चौथी ब्यात में होना
(ii) तापमान सामान्य या निम्न तापमान
(iii) चारा–दाना खाना बन्द
(iv) आँखे डरावनी सी, कांपना, दाँत कटकटाना, लड़खड़ा कर बैठ जाना
(v) बेहोशी, सिर को मोड़कर छाती पर रखना
(vi) पैरों में लकवा सा पड़ना या लचीलापन
(vii) आँखों की झिल्ली लाल
(viii) कब्ज और हल्का आफरा
(ix) पेशाब बन्द होना
(x) आवाज तेज होना
(xi) उपचार के अभाव में 3–4 दिनों में मृत्यु
(xii) कैल्शियम की सुई देने पर तुरन्त होश में आना, धीरे–धीरे उठना और कुछ मिनटों में खड़ा होना
(xiii) कमजोरी कई दिनों तक होना

उपचार

नीचे लिखी कोई एक दवा का 200 से 450 मि.ली. की मात्रा शिरा में सूई से दिया जा सकता है या त्वचा में कई जगह दे सकते हैं।

। मुख्य दवायें (औषधियां)

(i) कैल्शियम मैग्नेशियम बोरोग्लुकोनेट, (Calcicat)
(ii) कैल्शियम बोरोग्लुकोनेट
(iii) कालबोरोल (Calborol) या कैलीफी–सी (Calife-c)
(iv) कक्रसेज (Thiacal)
(v) मिफेक्स (Mifex), कैल्सीमैग (Calcimag)
(vi) कालमेक्स (Calmex) या कैलमैग (Calmag)
(vii) काल–बी–वेट (Cal-B-Vet)
(viii) कालवीब (Calvib)
(ix) मिल्क फीवर फार्मुला (फाइजर)
(x) मिफेकल (Mifecal), टेरीफिक्स–एम (Terifix-M)

ध्यान रखे कि इन दवाओं को प्रयोग करने के पहले बोतल को गर्म पानी में या धूप में रखकर गर्म कर लेना चाहिए तथा

धीरे–धीरे शिरा में चढ़ाना चाहिए।

(xi) कालडी–12 (Caldee-12) या कैल्सीवेट (Calcivet) 10–15 मि.ली. सप्ताह में 3 बार 1–2 सप्ताह तक मांस में सूई से देना चाहिए।

II मिनेरलमिक्चर आहार में मिलाकर खिलायें

(i) ओसोपान (Ossopan) 50–100 ग्राम प्रतिदिन दें।

(ii) टीएम–फोर्ट (TM-Forete) 5.5 किलो दवा को 200 किलो दाना में मिलायें।

(iii) सुपर मिनिमिक्स (Super Minimix) 40–50 ग्राम प्रतिदिन दें।

(iv) मिनिमिक्स (Minimix) 1 किलो को 100 किलो दाना में मिला कर खिलावें या प्रतिदिन 25–30 ग्राम दें।

(v) मिल्कमिन (Milkmin) 1 किलो को 100 किलो दाना में मिलावें।

(vi) कैल्सी रॉयल (Calci Royal) 40 ग्राम को दाना या पानी में प्रतिदिन दें।

III टानिक

रोग ठीक होने के बाद

(i) हिमालयन बत्तीसा आदि 25–30 ग्राम सुबह–शाम गुड़, आटे, सत्तू आदि के साथ देना चाहिए।

(iii) टोनोफौस्फेन 10–20 मि.ली. मांस में सप्ताह में दो बार सूई दे सकते हैं।

2. शर्करा की कमी एसिटोनेमिया या कीटोसिस या हाईपोग्लासेमिया

यह रोग मादा पशुओं को होता है। बच्चा देने के बाद 6 से 8 सप्ताह के अन्दर उनका एकाएक दूध देना बंद हो जाता है या दूध कम हो जाता है। अचानक उत्तेजित होना एवं खाना–पीना कम कर देना इस रोग के लक्षण होते हैं। यह अधिकतर दुधारू पशुओं जैसे गाय, भैंस, भेड़ एवं बकरियों को होता है।

कारण

पशु के रक्त में कार्बोहाइड्रेट की न्यूनता तथा ग्लूकोज का स्तर गिर जाने से यह रोग होता है। गर्भावस्था में प्रोटीन युक्त दाना अधिक खिलाने अथवा कार्बोहाइड्रेट युक्त दाना नहीं खिलाने से शरीर में कार्बोहाइड्रेट की कमी हो जाती है।

लक्षण

अचानक भूख की कमी, दूध देने में कमी, चलने–फिरने में अनिच्छा, एवं स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है। पशु के खड़ा होने पर कमर टेढ़ी हो जाती है। सिर झुका रहता है तथा आँखें आधी बंद रहती हैं। शारीरिक ताप सामान्य रहता है। पशु बैठने पर उठ नहीं पाता है। कभी पशु उत्तेजित होकर जंगली जानवर जैसा दिखता है, बड़ी–बड़ी निकली हुई आँखें दिखाई देती है। पशु दीवार चाटता है तथा अपने शरीर को इतना चाटता है कि त्वचा से खून निकल आता है। पशुओं में मिल्क फीवर जैसा भी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पशु यदि भूसा खाता है तो दूसरा अनाज नहीं खाता है। रक्त और मूत्र में एसीटोन का मिश्रण बढ़ जाता है जिसकी जाँच लैब में रोयराज टेस्ट से की जा सकती है। पशु गोल–गोल चक्कर में घूमता है। पैरो को एक दूसरे से क्राँस करते हुये कैंची का आकार बनाते हैं। पशु सिर को खींचकर या झुकाकर छाती पर रखते हैं। अंधापन जैसी अवस्था, अनाज को चाटना, भूख न लगना पर जुगाली करना आदि इस रोग के अन्य लक्षण हैं।

उपचार

(i) रिन्टोज (Rintose) 500–20000 मि.ली. बड़े पशुओं को तथा 100–200 मि.ली. छोटे पशुओं को शिरा में धीरे–धीरे सूई से त्वचा में कई जगह दें।

(ii) मिफेक्स (Mifex) या मिफेकल (Mifecal) या कैल्सीकैट (Calcicat) या कालमैग (calmag), या थियकल (Thiacal) कैलीफी सी (Calife-C) आदि औषधियों को शिरा या त्वचा में दिया जा सकता है।

(iii) डिक्सट्रोज (25% या 50%) का 200 से 500 मि.ली. की मात्रा में सुई द्वारा शिरा में दिया जा सकता है। इसके साथ में बेटनोसोल (Betnesol) या वेटकॉर्ट (Vetcort) डेक्सोना (Dexona), या होस्टाकॉर्टीन 'एच' (Hostacortin-H), डेक्सावेट (Dexavet) या काडेक्स (Cadex) या कुराडेक्स (Curadex) इत्यादि को 2–5 मि.ली. मात्रा मांस में सूई से देना चाहिए।

(iv) मक्के का दलिया (2 किलो) के साथ 1/2 किलो गुड़ मिलाकर सुबह–शाम खिलाना चाहिए।

(v) क्लोरल– 30 ग्राम और गुड़ या छोआ 1/2 किलो मिलाकर दिन में एक बार पिलाने से काफी लाभ होता है।

(vi) चारे के साथ थोड़ा गुड़ मिला कर दें।

(vii) प्रेडनीसोलन– 10 से 20 मि.ली.–बड़े पशुओं को, 2.5 से 5 मि.ली.–छोटे पशुओं को तथा 1 से 3 मि.ली.कुत्ते–बिल्ली को मांस में सूई से दें। इस ढंग से दोबारा 24 घण्टे के बाद दें।

3. ग्रास स्टैगर्स (Grass Staggers) या ग्रास टेटनी (Grass tetany) या लैक्टेशन टेटनी (Lactation tetany) या हाइपो मैगनेसेमिया (Hypo Magnesemia) :

यह अत्याधिक प्राणघातक रोग है जिससे अधिकतर दूध देने वाला पशु ऐंठन व कंपकपी के साथ बेहोश हो जाता है तथा उसकी एक घण्टे के अन्दर मृत्यु हो जाती है।

कारण

(i) वसन्त ऋतु के अंतिम दो सप्ताहों में हरे–भरे चारागाह में चरने के कारण यह रोग होता है। बछड़ों में यह रोग सिर्फ दूध पिलाने से होता है।

(ii) मैग्नीशियम उपापचय (Magnesium Metabolism) के गड़बड़ी के कारण।

लक्षण

दुग्ध अवस्था के किसी भी समय में यह रोग हो सकता है। पशु सुस्त रहता है व लड़खड़ाता है। दाँत कटकटाते हैं व शरीर ऐंठता है। पशु बार–बार पेशाब करता है। तापमान सामान्य रहता है। मांस पेशियाँ कांपती है तथा पूँछ और पिछले पैरों की पेशियों में ऐंठन या संकुचन होता है। पक्षाघात (लकवा) के कारण पशु उठने में असमर्थ हो जाता है। रोग की गम्भीर अवस्था में मांस पेशिया काम नहीं करतीं तथा कांपती हैं। इसके बाद पशु अत्याधिक उत्तेजित हो जाता है।

बछड़ों में इसे होल मिल्क टेटनी (Whole milk tetany) कहते हैं। इसमें बछड़ों में झटके लगना व ऐंठना तथा बेहोशी के लक्षण मिलते हैं तथा बछड़ा चिल्ला कर अचानक मर जाता है।

उपचार

(i) मैग्नीशियम ऑक्सिाइड 100 ग्राम प्रतिदिन एक सप्ताह तक खिलायें।

(ii) मैगनेशियम सल्फेट का 20% विशुद्ध (Sterile) घोल को 100–200 मि.ली. की मात्रा में त्वचा में सूई से लगाया जाता है।

(iii) मिफेक्स या मिफेकल या कालमेग या कैल्सीमैग (Calcimag) या कैल्शियम मैग्नीशियम बोरोग्लुकोनेट इत्यादि का 200–300 मि.ली. की मात्रा में बड़े पशुओं के या 50–100 मि.ली. की मात्रा में छोटे पशुओं को शिरा या त्वचा में सूई से दिया जाता है।

4. डाउनर काऊ सिन्ड्रोम (Downer Cow' Syndrome) :

इस रोग में कभी–कभी प्रसव के बाद या उससे पहले दुधारू पशु बैठ जाने पर पुन: उठ नहीं पाता है। कभी–कभी मिल्क फीवर रोग में गाय के बैठ जाने पर वह उठने में असमर्थ हो जाती है। मिल्क फीवर के समुचित उपचार किये जाने के

बाद भी शोचनीय स्थिति उस समय होती है जब पशु अपने पिछले पैर, सामान्यतः दाहिना पैर पर, अपने शरीर को नीचे की ओर करके झुक जाती है। इस प्रकार अधिक देर तक रहने पर उस पैर की नसें या पेशियाँ (Nerves / Muscles) क्षतिग्रस्त हो जाती है और वह उठने में असमर्थ हो जाती है।

कारण

इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे–

(i) उपापचीय अनियमता (Metabolic disorder) जैसे–कैल्शियम, मैग्नेशियम, फॉस्फोरस आदि की कमी।

(ii) रक्त प्रवाह में विष की उपस्थिति (Presence of toxins in the blood stream) साथ में पिछले भाग की अस्थियों का टूटना, कुल्हे का खिसकना आदि।

(iii) अन्य रोग जैसे– स्तन शोथ या गर्भाशय शोथ आदि।

(iv) नसों या पेशियों का क्षतिग्रस्त होना (Damage of nerves or muscles)

लक्षण

प्रसव के बाद होने पर मिल्क फीवर जैसे लक्षण अथवा प्रसव के पहले होने पर जो पशु बैठ जाते हैं दोबारा उठने में असमर्थ होते हैं। चेहरे से पशु सामान्य दिखते हैं तथा खाना–पीना भी प्रायः सामान्य रहता है। यदि उन्हें पकड़ कर उठाया जाय तो वे अपने अगले या पिछले पैरों पर भार नहीं देते। इसमें आगे या पीछे के एक या दोनों पैर प्रभावित हो सकते हैं।

यदि रोग गम्भीर स्थिति में नहीं है तो सामान्य उपचार से 2–4 दिनों में पशु खड़े हो जाते हैं। यदि स्थिति गम्भीर है और अधिक दिनों तक यानी 8–10 दिनों तक गाय उठ न सकी तो उसे खड़ा होना सम्भव नहीं होता। यद्यपि कुछ रोगी 2–3 हफ्तों के बाद भी खड़े हो जाते हैं।

उपचार

(i) मिल्क फीवर की दवाओं का प्रयोग करें

(ii) नसों को ताकत देने वाली दवा दें जैसे ट्रीगर, न्यूरोवियन, न्यूरौक्सिन, वेटन्यूटीन आदि को 10 मि.ली. मांस में सूई से लगायें

(iii) प्रभावित अंगों की सिकाई करें तथा लिनिमेन्ट लगायें

(iv) पशु को किसी वस्तु के सहारे लटका कर खड़ा करें

(v) बिछावन का घाव (ठमक`वतम) होने से बचावें

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है
जिनके बल पर वह विश्व की
साहित्यिक भाषाओं की अगली
श्रेणी में समासीन हो सकती है।
– मैथिलीशरण गुप्त

अधिक उत्पादन हेतु दुधारू पशुओं का संतुलित आहार

डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक[1]

गोवा में डेरी किसान ज्यादातर गाय (स्वेदशी और संकर) और कुछ भैंसे दुग्ध उत्पादन हेतु रखते हैं। डेरी पशुओं की पूर्ण आनुवंशिक क्षमता को पाने के लिए संतुलित राशन ज़रूरी है। पशु पालन में आहार की लागत कुल लागत का 75 प्रतिशत के आस-पास है। डेरी पालन व्यवसाय की सफलता राशन की गुणवत्ता एवं अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है। इसलिए पशुओं की पोषक तत्त्वों की आवश्यकताओं पर ज्ञान और डेरी पशुओं के भोजन पद्धतियों का ज्ञान अति आवश्यक है।

पोषक तत्त्वों की आवश्यकताएँ

डेरी पशुओं की अधिकतम उत्पादन के लिए पानी के अलावा पाँच पोषक तत्त्वों नामतः कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज और विटामिन की उचित एवं सही मात्रा में आवश्यकता होती है। पशुओं को उनके रख-रखाव, उत्पादन एवं प्रजनन प्रयोजनों के लिए इन पोषक तत्वों को आहार से मिलते हैं। सभी पोषक तत्व सभी पशु आहार में मौजूद रहता है लेकिन विभिन्न अनुपात में। इसलिए इन पोषक तत्वों की चर्चा नीचे दी गई है।

पानी

पानी पाचन के बाद शरीर के पाचन तत्वों से खाद्य सामग्री के अवशेष और अपशिष्ट उत्पादों के उन्मूलन में मदद करता हैं। पानी दूध का एक प्रमुख घटक है इसलिए यह दुग्ध उत्पादन में मदद करता है जानवर को अधिक दूध उत्पादन हेतु दिनभर साफ पानी उपलब्ध करना चाहिए। पशुओं को चारा के माध्यम के अलावा, पीने के पानी के रूप में, मुख्यत: पानी मिलता है।

कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट का मुख्य कार्य ऊर्जा प्रदान करना है। कार्बोहाइट्रेड के दो प्रकार है - (1) संरचनात्मक रेशेदार कार्बोहाइड्रेट और (2) घुलनशील कार्बोहाइड्रेट (शर्करा एवं स्टार्च) रेशेदार कार्बोहाइट्रेड का मुख्य स्त्रोत हरा चारा है। घुलनशील कार्बोहाइड्रेट का प्रमुख स्त्रोत (मक्का, चावल कनी, ज्वार आदि), तेल रहित पॉलिश चावल, गेहूँ चोकर आदि है। डेरी पशु दोनों प्रकार के कार्बोहाइड्रेट को अच्छी तरह से उपयोग करते हैं।

प्रोटीन

प्रोटीन का मुख्य कार्य ऊतक प्रोटीन या दुग्ध प्रोटीन तैयार करना है। स्त्रोत के आधार पर प्रोटीन के दो प्रकार हैं। नामत: वनस्पति प्रोटीन और पशु प्रोटीन। वनस्पति प्रोटीन का प्रमुख स्त्रोत फली चारा (लोबिया, ग्वार आदि) बीज की खली (सोयबीन, मुंगफली,

1. वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु पोषण), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

कपास आदि) और कुछ कृषि औद्योगिक सह उत्पाद (पॉलिश चावल) तेल रहित पॉलिश चावल और गेहूँ चोकर आदि हैं, हालांकि पशु प्रोटीन की गुणवत्ता वनस्पति प्रोटीन के वजह से बेहतर है।

वसा

वसा कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन की तुलना में 2.25 गुणा अधिक ऊर्जा प्रदान करता है। इसके अलावा यह आवश्यक वसा अम्ल (वसा अम्ल जो शरीर में संश्लेशित नहीं होती लेकिन शरीर के लिए आवश्यक है) प्रदान करता है, आहार को अधिक स्वादिस्ट बनाता है और आहार को धुलनशील रखता है। आहार में वसा के मुख्य स्त्रोत तेल बीज (कपास बीज,पूर्ण वसा सोयाबीन आदि) प्रकार, बीज की खली (मूँगफली कपास आदि) और आहार प्रतिपूरक (बाईपास वसा)

खनिज

डेरी पशुओं के लिए आवश्यक 17 खनिज परिभाषित हैं। खनिज दो समूहों में विभाजित है। सात गौण खनिज (कैल्शियम फॉस्फोरस, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, क्लोरीन और सल्फर) और दस सूक्ष्म खनिज (लोहा, तांबा, जाता मैंगनीज, कोबाल्ट आयोडीन, मोलिब्डेनम, सेलेनियम, क्रोमियम एवं फ्लोरीन) अन्य पोषक तत्वों (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा) के उचित उपयोग, पशुओं की स्वास्थ एवं वृद्धि, अधिक दूध उत्पादन हेतु और बांझपन कम रखने में उचित उपयोग करते हैं। हालांकि, प्रत्येक खनिज का अपना महत्व है, कैल्शियम और फास्फोरस दुधारू पशूओं के आहार में उच्चतम राशि में आवश्यक हैं।

विटामिन

लगभग 15 विटामिन डेरी पशुओं के लिए आवश्यक हैं। खनिजों की तरह विटामिन भी अन्य पोषक तत्वों, (कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन और वसा के उचित उपयोग) पशुओं की स्वास्थ ठीक रखने के लिए दुग्ध उत्पादन में वृद्धि और बांझपन को कम करने में मदद करते हैं। डेरी पशु अपने स्वयं के शरीर में विटामिन बी काम्प्लेक्स विटामिन सी, विटामिन के और विटामिन डी संश्लेषण की क्षमता रखते हैं। हालांकि विटामिन डी को संश्लेषण के लिए सूर्य के प्रकाश से संपर्क की जरूरत है। इस प्रकार से केवल विटामिन ए और ई डेरी पशुओं के आहार में आवश्यक हैं। हरा चारा इन विटामिन (ए और ई) का प्रमुख स्त्रोत है इसलिए जब हरा चारा की उपलब्धता सीमित नहीं होती है तो डेरी पशुओं को विटामिन मिश्रण का राशन उपलब्ध कराना चाहिए।

मैश (पाउडर) के रूप में दाना मिश्रण

पेलेट (गोली) के रूप में दाना मिश्रण

डेयरी पशुओं का आहार

डेरी पशुओं के संतुलित राशन में मुख्य रूप से दो घटक होते हैं जैसे कि दाना मिश्रण (कंसंट्रेट मिक्चर) और चारा। चारा हिस्सा में हरा चारा और सूखा चारा शामिल है।

दाना मिश्रण

दाना के मिश्रण अनाज, मक्का, टूटी हुई चावल गेंहू आदि अनाज के सह उत्पाद (पॉलिश चावल, तेल रहित पॉलिश चावल, गेहूँ का चोकर आदि), खली (सोयाबीन, मूंगफली, कपास आदि), खनिज मिश्रण और नमक आदि का आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग अनुपात में मिश्रण है। दाना के मिश्रण पशुओं को मैश (पाउडर) या पेलेट (गोली) के रूप में खिलाया जा सकता है।

हरा चारा

हरा चारा में खेतों की घास और कुछ पेड़ के पत्ते शामिल हैं। खेती की घास मुख्य रूप से दो प्रकार की है - फलीदार एवं गैर फलीदार। गोवा में फलीदार हरा चारा मुख्य तौर पर लोबिया और ग्वार के रूप में उगायी जाती हैं। जबकि गैर फलीदार हरा चारा में संकर नेपियर, पैरा घास, मक्का आदि प्रमुख हैं। फलीदार हरा चारा, क्रूड प्रोटीन (15-18 प्रतिशत) से प्रचुर होती है जबकि गैर फलिदार चारा कार्बोहाइड्रेट से प्रचुर होता है, एवं क्रूड प्रोटीन (8-10 प्रतिशत) में कम होती है। आमतौर पर घास में उपलब्ध पोषक तत्व खेतो में उगायें गए चारे की तुलना में कम होता है। चारा में ल्युशीनिया ल्युकोशिफैला (सुबबूल) सस्बेनिया (ढैचा) एवं ग्लाइसीडीया आदि शमिल हैं। चारा में क्रूड प्रोटीन की मात्रा (20-25%) ज्यादा होता है।

सूखा चारा

सूखा चारा में भूसा और फसलों के स्टोवर शामिल हैं, गोवा में सूखा चारा धान पुआल, सूखा कराड घास, मक्के का स्टोवर और ज्वार की भूसा (कडवा कुट्टी) आदि के रूप में उपलब्ध हैं। मक्का स्टोवर और कडवा कुटटी ज्यादातर पडोसी राज्य कर्नाटका से आयात किया जा रहा है। फसल के अवशेष मुख्य रूप से पशुओं के पेट भरते है किन्तु इनमें पौष्टिक तत्वों की बहुत कमी होती है।

डेरी पशुओं को खिलाने की पद्धति

डेरी पशुओं के राशन को दो भागों में बांटा जा सकता है (क) रख-रखाव राशन (ख) उत्पादन राशन। रख रखाव राशन पशु की सामान्य देखभाल करता है जबकि उत्पादन राशन जानवर की

वृद्धि, भ्रूण की गर्भावस्था में विकास और दूध के गठन आदि में शामिल है। पशुओं के दैनिक राशन का निर्णय रख-रखाव और उत्पादन की आवश्यकताओं को जोडकर होता है। डेरी पशु आमतौर पर चारा पर निर्भर रहते हैं इसलिए उन्हें केवल दाना के मिश्रण के साथ लम्बी अवधि तक नहीं रखा जा सकता जोकि किफायती भी नहीं हैं। सूखा चारा पौष्टिक तत्वों की दृष्टी से कम है और आम तौर पर जानवर का पेट भरने के लिए ही है, पशुओं की आवश्यकताओं को हरा चारा और दाना के मिश्रण से पूरा किया जा सकता है। गोवा में किसान के पास सीमांत कृषि योग्य भूमि और मज़दूरों की उपलब्धता न होने के कारण हरे चारे का उत्पादन बहुत कम है। इसके अलावा सडक के किनारे की घास और कराड़ घास केवल मानसून के मौसम के दौरान ही उपलब्ध होते हैं। हालांकि गोवा में भूमि का समुचित उपयोग के लिए एकीकृत फसल पद्धति दृष्टिकोण से काजू या नारियल के बागानों में व्यापक अंतर फसल पद्धति में हरा चारा उगाया जा सकता है। जानवरों को भोजन के दौरान दाना के मिश्रण को गोली के रूप में देने से अपव्यय कम होता है। अगर दाना का मिश्रण स्थानीय बाजार से खरीदते हैं तो उसकी गुणवत्ता के लिए उसका परीक्षण किया जाना चाहिए। हालांकि पशु की आहार सामग्री स्थानीय बाजार से खरीदा जा सकता है और दाना का मिश्रण डेरी किसान के द्वारा खुद तैयार किया जा सकता है, मक्का, अनाज आदि का जानवरों द्वारा समुचित उपयोग के लिए 1-1.5 मि.मि. के आकार का होना चाहिए अन्यथा ये जानवर द्वारा बिना पचाये मल में उत्सर्जित हो जाते हैं। भारतीय मानक ब्यूरों ने (BIS) डेरी पशुओं के लिए दो प्रकार के दाना (प्रकार 1 एवं प्रकार -2) के मिश्रण की सिफारिश की है। आमतौर पर प्रकार 1 के दाना के मिश्रण की सिफारिश की गयी है। इन दोनो प्रकार के दानों के मिश्रण के अनुपात नीचे दिये गये हैं।

गोवा में डेरी पशुओं के शरीर के वजन लगभग 300-500 कि.ग्रा. है और प्रति पशु की दैनिक दूध उत्पादन लगभग 5 लीटर है, हालांकि कुछ डेरी पशु की संख्या ऐसी भी है जो प्रति गाय 15 लीटर तक दूध और प्रति भैंस 8 लीटर तक दूध प्रतिदिन देती हैं। एक डेरी पशु के रख-रखाव की आवश्यकता जानवर की शरीर के वजन पर निर्भर है जबकि पशु की दूध उत्पादन के लिए आवश्यकता दूध उत्पादन और दूध की वसा की मात्रा के अनुसार बदलता रहता है। डेरी पशुओं के प्रतिदिन का आहार निम्नलिखित दिशा निर्देशानुसार बनाया जा सकता है।

तत्त्व	प्रकार -१	प्रकार-२
नमी (अधिकतम)	11	11
क्रूड प्रोटीन (न्यूनतम)	22	20
इथर इक्स्ट्रैक्ट (न्यूनतम)	3.0	2.5
क्रूड फाइबर (अधिकतम)	7.0	12.0
अम्ल में अधुलनशील राख (अधिकतम)	3.0	4.0
नमक (सोडियम क्लोराइड (अधिकतम)	2.0	2.0
कैल्शियम (न्यूनतम)	0.5	0.5
उपलब्ध फास्फोरस	0.5	0.5
विटामीन (ए आई यू/कि.ग्रा.)	5000	5000

- डेरी पशुओं को विशेष रूप से रसीला हरा फलीदार चारा नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि यह पाचन समस्याओं का कारण हो सकता है।
- ताज़े भार के आधार पर रसीला फलीदार हरा चारा को सूखा चारे के साथ 10:1 अनुपात में और गैर फलीदार हरा चारे के साथ 1:1 के अनुपात में मिलाना चाहिए। गैर फलीदार हरे चारे को सूखे चारे के साथ मिलाना आवश्यक नहीं है। 20-25 कि.ग्रा. हरा चारा 350 से 500 किलो वजन के डेरी पशु के दैनिक रख-रखाव के लिए पर्याप्त है।
- 25-30 किलो अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा डेरी पशु का दैनिक उत्पादन (प्रति गाय 7.0 लीटर तक दूध/दिन, प्रति भैंस 5 लीटर तक दूध/दिन) की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है।

- दाना के मिश्रण और हरा चारा के अलावा सूखा चारा जानवर को भरपूर मात्रा में देना चाहिए ताकि उसका पेट भर सके।
- 45-55 कि.ग्रा. अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा जानवर को खिलाने से उसकी रख-रखाव (300-500 कि.ग्रा. शरीर वजन) और उत्पादन (प्रति गाय प्रतिदिन तक 7 ली. दूध, प्रति भैंस प्रतिदिन 5 ली. तक दूध) के लिए पर्याप्त है। लेकिन उसके पेट भरने के लिए भरपूर सूखा चारा देना चाहिए।
- जब हरा चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता है तो इस दशा में डेरी किसान को पशु के पोषक तत्व की आवश्यकता के लिए दाना का मिश्रण (मैश अथवा पेलेट) से पूर्ण करना पड़ता है, लेकिन ध्यान रहे कि जितना अधिक दाना मिश्रण के ऊपर निर्भर रहेगें उतना ही उत्पादन की लागत बढ़ेगी।
- हरे चारे की उपलब्धता के अनुसार प्रति 10 किलो अच्छी गुणवत्ता के हरे चारे को एक किलो दाना के मिश्रण (20-22% क्रूड प्रोटीन) से प्रति स्थापित किया जा सकता है।
- निष्कर्षतः 4.5-5.0 किलो दाना के मिश्रण एक डेरी पशु की रख-रखाव (300-500 कि.ग्रा. शरीर वजन) और उत्पादन (प्रति गाय / प्रतिदिन 7 लीटर तक दूध, प्रति भैंस प्रति दिन 5 लीटर तक दूध) की आवश्यकता पूरा कर सकती है। लेकिन पेट भरने के लिए पशु को भरपूर सूखा चारा देना चाहिए।
- यदि भैस प्रतिदिन 5 लीटर से कम या ज्यादा दूध उत्पादन करती है तो इस दशा में प्रति लीटर दूध के हिसाब से 400 कि.ग्रा. दाना के मिश्रण को कम या ज्यादा दें।
- अगर डेरी पशु गर्भावस्था मे है तो रख-रखाव और उत्पादन के अतिरिक्त एक किलो दाना गर्भावस्था के अंतिम तीन महीनों में देना चाहिए।

डेयरी पशुओं की आहार पद्धति में महत्त्वपूर्ण सुझाव

- हरा चारा की बेहतर उपयोग के लिए डेरी पशुओं को देने से पूर्व 5-7 से.मी. में काटना होना चाहिए।
- यदि सम्भव है तो दाना मिश्रण को 6-8 घण्टे के लिए पानी में भिगोकर पशु को खिलायें।
- दाना के मिश्रण, हरा चारा और सूखा चारा (पुआल या भूसा) को अलग-अलग या कुल मिश्रित राशन के तौर पर खिलाया जा सकता है।
- बेहतर उपयोग के लिए पशु की कुल दैनिक राशन आवश्यकता को दो भाग में सुबह और दोपहर में देना चाहिए।
- कैल्शियम से भरपूर आहार या खनिज मिश्रण डेरी पशुओं को प्रसव से 15-30 दिन पूर्व से प्रसव तक दें क्योंकि इसकी कमी से दुग्ध बुखार (मिल्क फीवर) की संभावना बढ़ जाती है।
- डेरी पशुओं को सदा साफ और ताजे पानी उपलब्ध होना चाहिए। आसानी से पानी उपलब्ध कराने के लिए एक ढ़क्कन युक्त टंकी पशु के ही पास निर्माण किया जाना चाहिए। पानी साफ रखने के लिए पानी की टंकी को चूने का लेप लगाना चाहिए।

भारतीय भाषा ही राष्ट्रभाषा हो सकती है,
कोई विदेशी भाषा नहीं।
– हिदायतुल्ला खाँ

सांड की प्रजनन क्षमता

डॉ. एम. करूणाकरण[1], डॉ. ई.बी. चाकुरकर[2], डॉ. पी. के. नाईक[3], डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह[4]

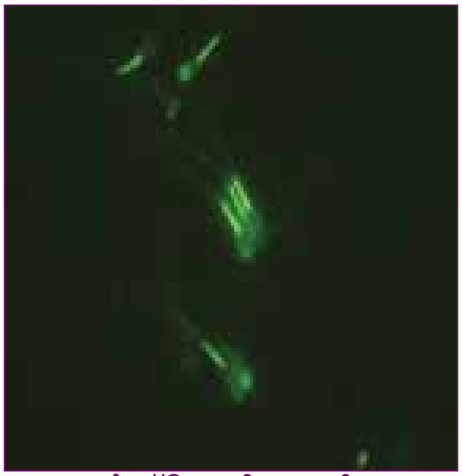
माइटोकॉंड्रिया की प्रभावशीलता

कृत्रिम गर्भाधान (ए. आई.) एक ऐसा प्रजनन जैव प्रौद्योगिकी तकनिकी है जिसके द्वारा चयनित प्रजनन नरों के वीर्य का सुरक्षित उपयोग संभव हुआ है। इस तकनीकी के इस्तेमाल से बेहतर नरों के वीर्य के प्रसार एवं आनुवंशिक गुणवत्ता की सुधार में योगदान हुआ है। दुधारू पशुओं में यह सुधार घातीय रूप में हुआ है क्योंकि इनमें जमें हुए वीर्य का सामान्य उपयोग हुआ है। आनुवंशिक सामग्री के उत्तम उपयोग के लिए अधिकतम दूध उत्पादन के अलावा स्वीकार्य प्रजनन क्षमता प्राप्त करना पूर्वाकांक्षित है। इसलिए वीर्य को उसके प्रजनन क्षमता के लिए जाँचना अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त सांड की प्रजनन क्षमता की सटीक मूल्यांकन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह वर्तमान और भविष्य के झुंड की प्रजनन क्षमता को प्रभावित करती है। प्रजनन व्यवसाय का उद्देश्य आनुवंशिक रूप से बेहतर बैल की पहचान तत्पश्चात वीर्य के अन्य गुणों के विश्लेषण की आधार पर सांडों की प्रजनन शक्ति के बारे में पूर्वसूचना प्राप्त करने की तरफ काफी ध्यान दिया जा रहा है। वीर्य प्लाज्मा और शुक्राणु में मौजूद प्रोटीन को सांड के प्रजनन शक्ति के मार्कर के रूप में सूचित किया गया है। वीर्य प्लाज्मा वृषण, अधिवृषण और यौन ग्रंथियों के स्राव का एक जटिल मिश्रण है जिसमे कई कारक निहित है जो शुक्राणु की प्रजनन क्षमता को संग्रहित करते है। कई अध्ययनों के द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त है कि शुक्राणु की सतह पर ये वीर्य प्रोटीन सोख लिए जाते हैं और उनके कार्य और गुण को प्रभावित करते हैं। माना गया है कि वीर्य प्रोटीन अंडाशय के नाली पर शुक्राणुओं के बाइंडिंग में मध्यस्थता करता है और झिल्ली के समाग्रता की सुरक्षा माइटोकॉंड्रिया, जिससे गर्भाधान के लिए जरूरी क्रियाकलाप और उपापचय पर रुकावट डालना है और इनसे उत्पादित संतति को अधिकाधिक करना है। इस उद्देश्य के लिए चयन किए गए सांड की प्रजनन क्षमता बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रचलित रूप से सांडों को वीर्य संग्रह कार्यक्रम में शामिल पद्धति करने से पूर्व उनकी प्रजनन सुदृढ़ता परीक्षा (बी. एस. ई.) किया जाता है। सांड से लिए वीर्य को उसकी मात्रा, शुक्राणु सेल की मात्रा, फूर्ती, व्यवहार्यता, आकारिकी एवं जमने और विगलन प्रक्रियाओं को झेलने की क्षमता के लिए जाँचा जाता है। पाया गया है की बी. एस. ई. के आधार पर चुने सांडों से प्राप्त करके जमाए गए वीर्य नमूने, जो वीर्य व्यवसाय के गुणवत्ता मानको के अनुकूल हैं, का प्रजनन दर 20-25 प्रतिशत है। सांडों के प्रजनन दर की यह विविधता सामान्य वीर्य जाँच मापदंडों से संबंधित नहीं किए जा सकते थे।

1. वैज्ञानिक (पशु प्रजनन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
2. वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु प्रजनन), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
3. वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु पोषण), गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा
4. निदेशक, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

सांड की प्रजनन क्षमता की सही जाँच तो उसके द्वारा कई मादाओं को गर्भाधान कराना है। लेकिन यह विधि काफी समय लेता है और सामान्य उपयोग के लिए खर्चीला है। इस पद्धति में सीमित संख्या के सांडों को ही एक साथ परखा जा सकता है। इसलिए पशु उद्योग में वीर्य के जाँच के आधार पर उनकी संभावित प्रजनन शक्ति को परखने या मूल्यांकित करने के सटीक और विश्वसनीय विधि विकास करना काफी फायदेमन्द साबित होगा। गर्भाधान के लिए ऊर्जा का संरक्षण और प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों का उत्पादन और शुक्राणु पर्दा का लिपिड पैराक्सिडेशन न्यूनतम दर्जे पर रखना सेमिनल प्रोटीन का काम है। प्रोटीन का योगदान एपोप्टॉसिस के विरोध एवं सेल के उत्तरजीवण में भी है। यह भी बताया गया है कि यह प्रोटीन शुक्राणु पर बन्धन स्थलों की संख्या बढ़ाकर और कोलोस्ट्रॉल की छूट को उत्तेजित करकर शुक्राणु सेलों की क्षमता बढ़ाता है। वीर्य प्रोटीन शुक्राणु और ऊसाइट के पारस्परिक व्यवहार और गर्भाधान का मध्यस्थ भी करता है। अतः ऑस्टियोपोनटिन, प्रोस्टाग्लाडिन डी सिन्थेस, बोवाइन सेमिनल प्लाज्मा प्रोटीन एवं हेपारिन बाइडिंग प्रोटीन को सांड के जननक्षमता का संकेतक सूचित किया गया है। शुक्राणु झिल्ली के प्रोटीन (24-30 के.डी.ए.) हेपारिन बाइडिंग संबंधी ऐन्टीजन माना गया है और नर प्रजनन क्षमता एवं विरासतीय गुणों का मार्कर पाया गया है। जिन साँडो में यह प्रोटीन पाया गया उनकी गर्भाधान प्रोटीन रहित साँडो की तुलना में 6-40 प्रतिशत ज्यादा पाया गया है। एक झुंड में पचास प्रतिशत से ज्यादा साँडो में यह गर्भाधान संबंधी प्रोटीन नहीं पाया जाता है। इसलिए साँड को वीर्य संग्रहण कार्यक्रम में शामिल करने से पहले उनके शुक्राणु झिल्ली में गर्भाधान संबंधी प्रोटीन के मौजूदगी के लिए जाँचना जरूरी है।

प्लाज्मा

मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा,
जब हिन्दी विश्व की सांस्कृतिक भाषा होगी।
— सुमितात्रानंद पंत

हिन्दी जब तक शिक्षा का माध्यम नहीं बनती,
उसमें मौलिक वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि संभव नहीं।।
— निहालकरण सेठी

कृषि विज्ञान केन्द्र का कृषि प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण में योगदान

डॉ. राज नारायण[1]

देश की लगभग 75-80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है, और आज भी लगभग 75 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिए खेती व खेती सम्बंधित व्यवसायों पर आश्रित हैं , जिसमें मुख्य कार्य फसलोत्पादन के अतिरिक्त पशु पालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, रेशम उत्पादन इत्यादि एवं खाद्य प्रसंस्करण, औजार निर्माण और उनकी मरम्मत तथा कृषि से प्राप्त विविध प्रकार के कच्चे माल पर आधारित अनेक गृह उद्योग सम्मलित हैं। कृषि पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था की गंभीरता से विचारणीय पहलू यह है कि कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में अंशदान दिनों दिन घट रहा है। अतः कृषि उत्पादन में वृद्धि के प्रयास किये जाना अति महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक तकनीकि अपनाकर इस दिशा में आशातीत परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में (द्वितीय) हरित क्रान्ति बल्कि इन्द्रधनुष क्रान्ति की बात कही जा रही है।

कृषि उत्पादन पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक भूमि, जलवायु, उपलब्ध संसाधन एवं सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां हैं और यह सभी स्थान-स्थान पर परिवर्तनशील हैं। इस दृष्टिकोण से विभिन्न स्थानों के लिए कृषि तकनीकें भी तदनुरूप निश्चित की जाती हैं। इसलिए देश में शोध संस्थानों का एक संजाल कार्य कर रहा है। परिणामस्वरूप अनेकानेक फलदायी, उत्तम तकनीकियां क्षेत्रीय स्तर पर भी विकसित हुई हैं। आवश्यकता इन तकनीकों को सम्बन्धित लोगों तक पहुंचाने की है। तकनीकि प्रसार व हस्तान्तरण के इसी उद्देश्य के लिए राष्ट्र की कृषि अनुसंधान शिक्षा एवं प्रसार की सर्वोच्च संस्था (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद) ने कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना जनपद स्तर पर की है। अब तक देश में 630 कृषि विज्ञान केन्द्र खोले जा चुके हैं। कृषि विज्ञान केन्द्र के प्रमुख कार्यों में स्थापित नई प्रौद्योगिकी का स्थानीय स्तर पर केन्द्र के परिसर प्रक्षेत्र एवं किसानों के खेतो पर परीक्षण, लाभदायक प्रक्रियाओं के प्रदर्शन, प्रसार कार्यकर्ताओं, कृषकों, खेतिहर महिलाओं एवं ग्रामीण युवकों को विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण आयोजित करना सम्मिलित है।

कृषि विज्ञान केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इसके शीर्ष अधिकारी कार्यक्रम समन्वयक की सहायता हेतु विषय विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान, उद्यान शास्त्र, फसल सुरक्षा, पशु विज्ञान, गृह विज्ञान एवं कृषि प्रसार तथा आवश्यकतानुसार अन्य) पदस्थ होते हैं। केन्द्र पदस्थ विषय विशेषज्ञों की सहायता से अपने कार्य क्षेत्र में सहज, सस्ती एवं लाभप्रद तकनीकों/कार्यविधियों का प्रचार एवं अंगीकार के प्रयास करता है, जिससे लोगों की आय में वृद्धि हो एवं उनका जीवन स्तर सुधरे।

1. कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा, गोवा

फसलोत्पादन

विभिन्न क्षेत्रों की प्रमुख फसलें अलग अलग है। सम्बन्धित फसल के उत्तम बीज तथा वैज्ञानिक एवं स्थानीय पुरातन तकनीकी ज्ञान के समन्वय से स्थापित उत्पादन प्रविधियों के साथ साथ फसल सुरक्षा के उपाय अपनाने को प्रोत्साहित कर खेती की उत्पादका बढ़ाने के प्रयास हाथ में लाये जाते हैं। इनका विवरण केन्द्र की वार्षिक कार्य योजना के अधीन निश्चित किया जाता है और शस्य विज्ञान के विषय विशेषज्ञ इसके क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व वहन करते हैं। उनकी देखरेख में अग्रगामी/खेत प्रदर्शन आयोजित होते हैं जहाँ प्रत्येक कृषि कार्य उनके मार्गदर्शन में होता है। इससे अच्छी फसल इन प्रदर्शनों से लेना सम्भव होता है, जिससे अन्य कृषक प्रोत्साहित होते हैं और अपनी फसल उगाने में वे इन सुधरी प्रविधियों को अपनाते हैं और बढ़े उत्पादन के रूप में लाभान्वित होते है।

बागवानी

फल और सब्जियों के भोजन में महत्वपूर्ण स्थान के दृष्टिकोण से उद्यानशास्त्र के विषय विशेषज्ञ फल एवं सब्जी उत्पादन में वृद्धि के लिये खेती की सामान्य फसलों के अन्तर्गत किये जाने वाले प्रयासों के मानिन्द ही कार्य करते हैं। विभिन्न प्रदर्शनों, प्रशिक्षण/कार्यशालाओं के आयोजन, उत्तम उत्पादन (बीज/पौध,कृषि यंत्र इत्यादि) के वितरण आपूर्ति एवं अन्य आवश्यक उपाय अपनाकर स्थानीय भू-जलवायु के माफिक फल/सब्जी फसलों की अच्छी उपज प्राप्त करने में उत्पादकों की सहायता करते हैं। साथ ही साथ आवश्यकता एवं भविष्य-सापेक्ष फूल, सगंध एवं औषधि की फसलों को उगाने हेतु भी उत्प्रेरित करते है। इस सन्दर्भ में उत्तम बीज रोपण सामग्री का उत्पादन, प्रतिरोपण तकनीकी, सामयिक देखभाल (सिंचाई, कटाई-छटाई, फसल सुरक्षा इत्यादि) पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समय से उत्पादन की कटाई/तुड़ाई, कटाई उपरान्त प्रबंध एवं विपणन पर भी आवश्यक सुझाव व सहायता देने का प्रयास किया जाता है जिससे किसान को अधिक लाभ प्राप्त हो।

फसल सुरक्षा

फसलों को रोग, कीट, खरपतवार एवं अन्य जीव-जन्तु हानि पहुँचाकर किसान की मेहनत बेकार करते हैं। अतः सभी प्रकार (खाद्यान्न, फल, सब्जी आदि) की फसलों को उपरोक्त शत्रुओं से बचाव करना अत्यावश्यक है। इसी दृष्टीकोन से इन केन्द्रों पर एक फसल सुरक्षा विशेषज्ञ पदस्थ होता है। इसका उत्तरदायित्व क्षेत्रीय फसलों की सुरक्षा सम्बन्धी परामर्श, प्रदर्शन, प्रशिक्षण एवं त्वरित सहायता कृषकों को उपलब्ध कराकर न्यूनतम हानि सुनिश्चित करना होता है। क्षेत्र के प्रमुख फसल व्याधियों का सर्वेक्षण, उनके द्वारा होने वाली हानि के समय/स्तर की पहचान व आकलन एवं प्रभावी उपचारों का यंत्रीकरण इत्यादि सम्बधित बिन्दुओं का विशिष्ट अध्ययन करना होता है। फसल सुरक्षा हेतु भूमि शोधन, बीजोपचार, से प्रारम्भ होकर, फसल की विभिन्न अवस्थाओं एवं भण्डारण में सतर्कता की आवश्यकता होती है। अतः फसल सुरक्षा विशेषज्ञ का दायित्व अच्छी फसल पैदा करने में अति महत्वपूर्ण होता है, जो किसी महामारी के समय और भी बढ़ जाता है। समेकित जीवनाशी प्रबंन्धन विधियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

पशुपालन

कृषि के खेती एवं पशुपालन दो महत्वपूर्ण अंश है। क्षेत्र विशेष के अनुसार गाय, भैंस, बकरी, भेड, ऊंट, शूकर, जैसे बड़े पशुओं, खरगोश जैसे छोटे जनावरों तथा मुर्गी, बत्तख, बटेर जैसे पक्षियों के पालने की उन्नत विधियों में किसानों को प्रशिक्षित करके कृषि विविधीकरण का प्रयास किया जाता है, जिससे वे अपने उपलब्ध संसाधनों का समुचित दोहन कर दूध, मांस, अंडा, ऊन आदि उत्पादों के द्वारा रोजगार व आय का सृजन कर सकें। अच्छी नस्ल के 1-2 दुधारु पशु, अथवा घर के पिछवाड़े में खरगोश या मुर्गीपालन जैसे

कार्य करने हेतु किसान परिवार को प्रेरित किया जाता है। केन्द्र पर भी पशु पालन, मुर्गी पालन, शूकर पालन व खरगोश पालन की प्रदर्शन इकाईंया स्थापित की जाती हैं जो क्षेत्रीय जनता के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती हैं। उद्यमी कृषकों को पशु विशेषज्ञों द्वारा निरन्तर सलाह मशवरा, मार्गदर्शन एवं उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादनों की आपूर्ति सम्बन्धी सहायता उपलब्ध कराई जाती है, जिससे हानि का जोखम न्यूनतम था।

गृह विज्ञान

प्रत्येक कृषि विज्ञान केन्द्र पर गृह विज्ञान की एक विषय विशेषज्ञ की नियुक्ति की जाती है, जो बाल व महिला विकास के कार्यक्रयों के संचालन हेतु उत्तरदायी होता है। केन्द्र के कार्य क्षेत्र में महिलाओं के स्वयं सहायता समूह गठित कर आय वर्धक कार्य हाथ में लेकर प्रेरित करने का कार्य किया जाता है। इनमें क्षेत्र के विभिन्न कृषि उत्पादों के मूल्यवर्धित, परिरक्षित पदार्थो का निर्माण, हस्तकौशल्य वस्तुओं का कुटीर उत्पादन, स्वास्थ्यप्रद फल/सब्जी के उत्पादन हेतु गृह पोषण वाटिका की स्थापना तथा अन्य कृषि एवं घर के पिछवाड़े के उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग के कार्य सम्मिलित होते है। इस हेतु समय समय पर केन्द्र एवं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण, कार्यशालाओं एवं प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है। इन कार्यक्रयों का प्रमुख उद्देश्य युवतियों/महिलाओं को तत्सम्बन्धित कलाओं में पारंगत करना होता है। जिससे वो स्वरोजगार होकर सशक्त बन सके।

कृषि प्रसार

कृषि प्रसार के विषय विशेषज्ञ का कृषि विज्ञान केन्द्र के क्रिया कलापों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। क्षेत्रीय आंकडों एवं अन्य आधारभूत सूचनाओं का संकलन उनके प्रयास से उपलब्ध होता है, जिससे योजनायें बनाई जाती हैं। केन्द्र के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में अधिकतम संज्ञान इसी पदाधिकारी को होता है। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा किये गये प्रयासों के प्रभाव का अध्यन करना भी इसके उत्तरदायित्व में समाहित है। अंगीकृत ग्राम (यदि कोई है), की योजना प्रारम्भ के पूर्व तथा पश्चात का विशद अध्ययन भी इन्हीं को करना होता है। इस प्रकार वस्तुतः कृषि प्रसार विषय विशेषज्ञ केन्द्र के कार्यक्रम समन्वयक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण दाहिने हाथ के जैसा होता है।

नियमित प्रशिक्षण सत्रों के अतिरिक्त संगोष्टी, कार्यशाला, कृषि/पशु प्रदर्शनी, किसान गोष्टी, प्रक्षेत्र दिवस, कृषक भ्रमण इत्यादि जैसे कार्यक्रयों का कृषि विज्ञान केंन्द्र की प्रविधियों में अपना एक अलग महत्व है, जिसके बिना किसी ऐसे केन्द्र का कार्य अधूरा ही कहा जायेगा। उपरोक्त आयोजनों में भी कृषि प्रसार के विशेषज्ञ का विशेष योगदान होता है।

प्रत्येक कृषि विज्ञान केंद्र की कार्ययोजना अधिदेश के अनुसार क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार बनाई जाती है। फिर भी कार्य क्षेत्र को गहन कार्य करने के दृष्टिकोण से कतिपयकोटर स्थान चुने जाने चाहिये, जहाँ कार्य सधनता से किया जाये ताकि उसका प्रभाव शीघ्र दिखाई पड़े। तीन वर्ष के बाद इन विकसित स्थानों को अनुवर्ती देख-रेख /सलाह हेतु कम समय देने की आवश्यकता रहे और अन्य नवीन स्थान गहन क्रिया कलापो के लिये चुने जाँए। अंगीकृत ग्रामयोजना भी इसी विचार का एक प्रतिरूप है, इसमें बीज ग्राम, जैविक कृषि ग्राम, दुग्धग्राम, रेशम ग्राम, जल संरक्षण ग्राम जैसे कई रूप हो सकते हैं। समूह बनाकर, स्थानिक तकतनीकी ज्ञान एवं शोध परक स्थापित प्रविधियों के समन्वय स्वरूप निकली ऐसी पद्धतियों के अंगीकरण पर विशेष बल दिया जाना चाहिये जो अपनाने में सुगम, कम, खर्चीली और निश्चित रूप से अधिकाधिक लाभकारी हों। साथ ही साथ हमारे प्राकृतिक संसाधन भी संरक्षित रहें।

आज खेती कई समस्याओं से दो चार है। खेती के लिए भूमि चाहिए, जो दिनोंदिन सीमित होती जा रही है। सिंचाई के लिये पानी चाहिये जो प्रदूषित होता जा रहा है और आवश्यक जलवायु में प्रतिकूल परिवर्तन हो रहे हैं। दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या एवं स्वास्थ्य परिप्रेक्ष्यों में अधिक उत्पादन के लक्ष्य को ध्यान में रखकर इन केन्द्रो को कार्य करने की आवश्यकता है।

संस्थान का अनुसूचित जनजाति सह–योजना के अन्तर्गत गतिविधियाँ

अनुसूचित जनजाति के लिए कार्यक्रम २०११–२०१२

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात एवं उनके विकास हेतु केन्द्रीय मंत्रालयों एवं विभागों के सामान्य क्षेत्रों के लाभ को भौतिक एवं वित्तीय दृष्टि से केन्द्रित करने के उद्देश्य से जनजातीय सह–योजना को सरकार ने बनाया है। इस सहयोजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बीच गरीबी एवं बेरोजगारी को घटानी और इनके उत्पादन परिसम्पत्तियों एवं मानव संसाधन का विकास है।

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, ओल्ड गोवा को इस सहयोजना के तहत वर्ष 2011–2012 में रु. 75,3300/– का आवंटन मिला था। हमारे इस संस्थान में आवंटन का इस्तेमाल गोवा के अनुसूचित जनजातियों में जलकुण्ड, गुणवत्ता रोपड़ सामग्री, उवर्रक एवं कृषि रसायन, कृषि यंत्र एवं औजार, ग्रीन हाउस की आपूर्ति, सुपारी पत्तल बनाने के यंत्र, गृह परिसर खेती के सुधार के लिए कुक्कुट पालन, कम लागत में पोल्ट्री शेड़ आदि का वितरण, फीड़ ब्लाक मशीन, चारे की उन्नत कृषि एवं पशुपालन प्रथाओं पर प्रशिक्षण आदि गतिविधियों में खर्च किया गया।

1.	गोवा के लघु एवं सीमान्त अनुसूचित जनजाति कृषकों के लिए कृषि यंत्रीकरण कार्यक्रम	डॉ. मतला जूलियट गुप्ता
2	गोवा के अनुसूचित जनजाति कृषकों के लिए प्राकृतिक संवातन ग्रीनहाउस के अन्तर्गत नर्सरी कार्यक्रम	डॉ. मतला जूलियट गुप्ता डॉ. एम. थंगम
3	गोवा के अनुसूचित जनजाति कृषकों के जीवन स्तर सुधार के लिए पशुपोषण का तकनीकी कार्यक्रम	डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक
4	गोवा के अनुसूचित जनजाति के कृषकों के पशुपालन एवं मुर्गीपालन का कार्यक्रम	डॉ. ई.बी. चाकुरकर डॉ. एम. करूणाकरण डॉ. बी.के. स्वाई डॉ. पी. के. नाईक
5	गोवा के अनुसूचित जनजाति कृषकों के आर्थिक सुधार हेतु हस्त शिल्प कार्यक्रम	डॉ. वी. अरूणाचलम
6	गोवा के अनुसूचित जनजाति कृषकों के क्षेत्रों में धान की उत्पादन एवं उत्पादकता के वृद्धि के लिए कार्यक्रम	डॉ. के. के. मनोहर डॉ. मरूददुरई
7	गोवा के अनुसूचित जनजाति कृषकों के जीवन स्तर सुधार के लिए अधिक उत्पादतकता वाले रोपड़ फसलों एवं आम की खेती का कार्यक्रम	डॉ. ए.आर.देसाई डॉ. राम रतन वर्मा डॉ. मरूददुरई
8	गोवा के अनुसूचित जनजाति समुदाय के जीवन स्तर सुधार के लिए जल संचयन कार्यक्रम	डॉ. राम रतन वर्मा

संस्थान का अनुसूचित जनजाति सह-योजना के अन्तर्गत गतिविधियों की झलकियाँ

भव्य भारत की हमारी मातृभूमि हरी भरी
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी
– मैथिलीशरण गुप्त

मैं सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ
परन्तु मेरे देश में हिन्दी की।
इज्जत न हो मैं यह सह नहीं सकता।
– विनोबा भावे

संस्थान की राष्ट्र भाषा कार्यक्रम

गोवा के लिए भा.कृ.अनु.प. का अनुसंधान परिसर, एला, ओल्ड गोवा में सितम्बर 14–28, 2011 हिन्दी पखवाड़ा आयोजित किया गया। बड़े धूमधाम से 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाकर संस्थान के निदेशक डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह जी ने पखवाड़े का शुभारम्भ किया। इस पखवाड़े के दौरान कई प्रतियोगितायें आयोजित किए गए। हिन्दी निबंध, सुलेख, पत्र लेखन, हिन्दी व्याख्यान (चार वर्गों में– सहायक कर्मचारी, प्रशासनिक, तकनीकी कर्मचारी एवं वैज्ञानिकों के लिए), कविता, शायरी, अंताक्षरी, गीत गायन, चुटकला, सामान्य ज्ञान एवं वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। संस्थान के कर्मचारियों के बच्चों की प्रतिभा दर्शन के लिए कई प्रतियोगिताएं आयोजित किए गए। इन प्रतियोगिताओं में 8 सहायक, 8 प्रशासनिक, 9 तकनीकी अधिकारियों/ कर्मचारियों, 8 शोधार्थी, 4 छात्रों, 8 वैज्ञानिकों ने बड़ी संख्या में भाग किया। 28 सितम्बर 2011 को हिन्दी पखवाड़े के समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह में गोवा बागायददार सहकारी खरीदी बिक्री संस्थान मर्यादित के चेयरमैन, श्री नरेन्द्र सावयकर को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। समारोह का शुभारम्भ ईश्वर वन्दना से किया गया। संस्थान के निदेशक डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह जी ने स्वागत भाषण देते हुए आशा व्यक्त की कि इस पखवाड़े के समाप्ति के बाद भी संस्थान की कार्रवाही में राजभाषा का प्रचलन और बढ़ेगा। उन्होंने, सचिव (रा.भा.) को कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए बधाई दी। डॉ. श्रीमती मतला जूलियट गुप्ता, सविच (रा.भा.) ने संक्षेप में पखवाड़े के दौरान आयोजित कार्यक्रमों और प्रतियोगिताओं की रूप–रेखा प्रस्तुत किया। मुख्य अतिथि ने सभा को सम्बोधित किया तथा प्रबंधन संस्थान को हिन्दी पखवाड़े के आयोजन पर बधाई दी। इसके पश्चात् मुख्य अतिथि श्री नरेन्द्र सावयकर और डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह जी ने अपने कर–कमलों से विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किए।

पुरस्कार्थियों के नाम

हिन्दी निबन्ध

1.	तेजस्विनी सूर्यकांत पाटिल	प्रथम
2.	यशवंत गावस	द्वितीय
3.	सिद्धार्थ मराठे	तृतीय
4.	जान्हवी कोलवालकर	प्रोत्साहन
5.	प्रतिभा सावंत	प्रोत्साहन
6.	विनोद पागी	प्रोत्साहन

सुलेख प्रतियोगिता

1.	मदिना सोलापुरे	प्रथम
2.	तेजस्विनी पाटिल	द्वितीय
3.	सपना सुहास गायतोंडे	तृतीय
4.	प्रिया देवी	प्रोत्साहन
5.	प्रतिभा सावंत	प्रोत्साहन
6.	शेफाली कृष्णा नाईक	प्रोत्साहन
7.	यशवंत केशव गावस	प्रोत्साहन
8.	आँचल शर्मा	प्रोत्साहन

व्याख्यान प्रतियोगिता

वैज्ञानिकों के लिए

1.	डॉ. ई. बी. चाकूरकर	प्रथम
2.	डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक	द्वितीय
3.	डॉ. बी. के. स्वाई	तृतीय

तकनीकी कर्मचारियों

1.	यशवंत गावस	प्रथम
2.	राहुल कुलकर्णी	द्वितीय
3.	अंकुश कांबली	तृतीय

प्रशासनिक

1. प्रतिभा सावंत — प्रथम

सहयोगी कर्मचारी

1. श्री विलास गावस — प्रथम
2. श्री शाणू वेलीप — द्वितीय
3. श्री पाईक पायकर — तृतीय

पत्र लेखन प्रतियोगिता

1. सपना सुहास गायतोंडे — प्रथम
2. प्रतिभा सावंत — द्वितीय
3. यशवंत केशव गावस — तृतीय

कविता प्रतियोगिता

1. डॉ. बिजय कुमार स्वाई — प्रथम
2. सिद्धार्थ मराठे — द्वितीय
3. यशवंत केशव गावस — तृतीय
4. प्रतिभा सावंत — तृतीय
5. सपना सुहास गायतोंडे — तृतीय

शायरी प्रतियोगिता

1. डॉ. ई. बी. चाकूरकर — प्रथम
2. जान्हवी कोलवालकर — द्वितीय
3. यशवंत केशव गावस — तृतीय
4. राहुल कुलकर्णी — तृतीय

अंताक्षरी प्रतियोगिता

दल 'ग' प्रथम

1. सपना सुहास गायतोंडे
2. सिद्धार्थ मराठे
3. मदिना सोलापुरे
4. सुनंदा चोपडेकर

दल 'क' द्वितीय

1. जान्हवी कोलवालकर
2. अनुराधा नाईक
3. लक्ष्मण अशोक नाईक
4. रवि एस कदम

दल 'ख' तृतीय

1. प्रतिभा सावंत
2. आशा मंजरेकर
3. गौरी आचारी
4. तेजस्विनी पाटिल

सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता

1. विनोद पागी — प्रथम
2. प्रतिभा सावंत — द्वितीय
3. राहुल कुलकर्णी — तृतीय
4. जान्हवी कोलवालकर — तृतीय

वाद–विवाद प्रतियोगिता

1. डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाईक — प्रथम
2. डॉ. राजनारायण — द्वितीय
3. डॉ. बी. के. स्वाई — तृतीय
4. डॉ. बी. एल. मंजूनाथ — प्रोत्साहन

बच्चों के लिए प्रतियोगिताएं

नन्हे तारे

1. हेरंब सावंत — प्रथम
2. सामिया — द्वितीय
3. प्रियांशी राज — तृतीय
4. युक्ता — प्रोत्साहन

उभरते सितारे

1. दिशांत — प्रथम
2. हरिहरन — द्वितीय
3. भूषण — तृतीय
4. उत्तम सावंत — प्रोत्साहन

चमकता सितारा

1. कारमुगिलन तंगम — प्रथम

सुलेख

1. सुमेधा प्रभु — प्रथम
2. निहार रवि कदम — द्वितीय
3. माधवी भोमकर — तृतीय
4. नंदिता सातरकर — प्रोत्साहन

निबंध

1. मेधा कदम — प्रथम
2. कुशमाला ईरप्पा — द्वितीय
3. आशीष कुमार — द्वितीय
4. सबिल सोलापुरे — तृतीय
5. सुचित प्रभु — प्रोत्साहन

प्रतिभा प्रदर्शन

उमड़ते सितारे

1. प्रियांशी राज — प्रथम
2. सामिया सोलापुरे — द्वितीय
3. हेरंब सावंत — तृतीय

'क' वर्ग

1. हरिहरन रमेश — प्रथम
2. कारमुगिलन तंगम — द्वितीय
3. नंदिता — तृतीय

'ख' वर्ग

1. नीलगंगा ईरप्पा — प्रथम
2. श्रद्धा — द्वितीय
3. हरिणी देसाई — तृतीय

वाद विवाद प्रतियोगिता

1. आशीष कुमार — प्रथम
2. सुचित प्रभु — द्वितीय
3. मेघा कदम — तृतीय
4. कुशमाला ईरप्पा — तृतीय

सबको निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकण सा
आँसू इस विश्व सदन में

– **जयशंकर प्रसाद**

"भारतीय भाषाएं नदियां है और हिन्दी महानदी"

– **रवीन्द्र नाथ ठाकुर**

हिन्दी पखवाड़ा 2011 की झलकियाँ

देश की समृद्धि और विकास का रास्ता
गाँवों से हो कर गुजरता है।
– चरण सिंह

मातृभाषा मनुष्य के विकास के लिए इतनी ही स्वाभाविक है जितना छोटे बच्चे के शरीर के विकास के लिए माँ का दूध। इसीलिए मैं बच्चों के मानसिक विकास के लिए उन पर माँ की भाषा को छोड़कर दूसरी कोई भाषा लादना मातृभूमि के प्रति पाप समझता हूँ।

– महात्मा गाँधी